अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका
जनवरी २०२२

प्रेम का गीतिकाव्य

विषय-सूची

सावित्री—प्रेम का गीतिकाव्य

प्रार्थना/सम्पादकीय		३
नव वर्ष शुभ हो	'श्रीमातृवाणी' से	५
श्रीमाँ 'सावित्री' पर		६
'सावित्री' पर श्रीमाँ के साथ हुआ वार्तालाप	मोना सरकार	७
'सावित्री' शक्ति देती है	मोना सरकार	१३
'सावित्री' से चुने हुए कुछ उद्धरण		१६

पुरोघा

दैनन्दिनी		६२
मेज़पोश...	वन्दना	६३

अग्निशिखा

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—२००रु.; तीन वर्ष—५८०रु.; पाँच वर्ष—९६०रु.

संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी

प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तें स्ट्रीट, पुदुच्चेरी ६०५००१

मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू,
पुदुच्चेरी ६०५००१, भारत

सम्पादिका : वन्दना

Registered with the Registrar of Newspapers for India: No. 18135/70

दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org

Website: www. aurosociety.org

प्रार्थना

२५ अगस्त १९१४

हे प्रभो, तेरी इच्छा पूर्ण हो, तेरा कार्य चरितार्थ हो। हमारी भक्ति को दृढ़ बना, हमारे समर्पण को बढ़ा, हमें मार्ग पर प्रकाश दे। हम तुझे अपने अन्दर अपने उच्चतम स्वामी के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं ताकि तू समस्त पृथ्वी का परम स्वामी बन जाये।

हमारी वाणी अभी तक अज्ञानमय है : उसे प्रबुद्ध कर।

हमारी अभीप्सा अभी तक अपूर्ण है : उसे शुद्ध कर।

हमारा कर्म अभी तक शक्ति-विहीन है : उसे प्रभावशाली बना।

हे प्रभो, धरती कराहती और कष्ट सहती है; अस्त-व्यस्तता ने पृथ्वी को अपना घर बना लिया है।

अँधेरा इतना घना है कि केवल तू ही उसे भगा सकता है। आ, अपने-आपको अभिव्यक्त कर ताकि तेरा कार्य पूरा हो सके।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. १३४

सम्पादकीय : जैसा कि श्रीमाँ ने हमारे सम्मुख प्रकट किया है, **सावित्री** रूपान्तर का मन्त्र है। जितना हम पढ़ कर, लिख कर, सुन कर, इस पर मनन-चिन्तन और ध्यान करके, इसके वातावरण में निवास करेंगे, इसी में श्वास लेंगे, उतना ही हम उस भावी 'सत्य' और 'सौन्दर्य' के 'प्रकाश' में विकसित होंगे जिसे 'सावित्री' ने हमारे सामने प्रस्तुत किया है। 'सावित्री' श्रीअरविन्द की सबसे महत्त्वपूर्ण और महानतम कृति है जो हमारे लिए महानतर चेतना के द्वार खोल देती है—'प्रकाश', 'सौन्दर्य', 'सत्य', 'शान्ति' तथा 'विस्तार' के द्वार, अनन्त 'प्रेम' तथा 'दिव्यानन्द' के द्वार, उच्चतर 'सामञ्जस्य' के सुर-ताल के द्वार।

इस अंक में हम इस आशा के साथ 'सावित्री' के कुछ हिस्सों का संकलन दे रहे हैं कि पाठकगण उस परम अन्तर्दर्शन का कुछ रसास्वादन पा सकें, उसको अनुभव कर सकें। यह हमारे लिए एक निमन्त्रण-पत्र है कि हम श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ के शब्द-शरीर और ध्वनि-शरीर की ओर मुड़ें और इसके जीवन्त सम्पर्क द्वारा यह मन्त्र हमारे अन्दर मूर्तरूप धारण कर प्रतिष्ठित हो जाये तथा हमें रूपान्तर के पथ पर अधिकाधिक बढ़ा ले आये।

यह हमारे प्रभु, हमारे स्वामी द्वारा बुनी हुई जीवन्त उपस्थिति है, शाश्वत मनीषी द्वारा हाथ में थमायी गयी वह पतवार है जिसके सहारे मानवता बीते कल के पंकिल जलों से निकल कर आगामी कल की भागवत अतिमानवता के विशाल सागरों के उज्ज्वल प्रकाश में आ निकलेगी।

मौन भाव से सकल विश्व-प्रकृति केवल उसी को टेरती है
कि उसकी चरण-धूलि पा जीवन-पीड़ा की कसक थम जाये।

सावित्री, पृ. ३१४

Bonne Année
blessings

१९७२

नव वर्ष शुभ हो

यह वर्ष श्रीअरविन्द को निवेदित है।

श्रीअरविन्द धरती पर जो प्रकाश, ज्ञान और शक्ति इतनी उदारता के साथ लेकर आये हैं उस सबके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करने के लिए सबसे अच्छा उपाय है कि हम उनकी शिक्षा को अच्छी तरह समझने और उसे कार्यान्वित करने की कोशिश करें।

उनकी शिक्षा हमें प्रकाश दे और हमारा मार्ग-दर्शन करे, आज हम जिस चीज़ को नहीं कर पाते, उसे निश्चय ही कल कर लेंगे।

आओ, हम पूरी सच्चाई और निष्कपटता के साथ उचित मनोभाव अपनायें, तब यह सचमुच **शुभ वर्ष** होगा।

३१ दिसम्बर १९७१

*

भगवान् के बिना हम सीमित, अक्षम और असहाय प्राणी हैं; भगवान् के साथ यदि हम अपने-आपको पूरी तरह उन्हें समर्पित कर सकें, तो सब कुछ सम्भव है और हमारी प्रगति असीम होगी।

श्रीअरविन्द के शताब्दी-वर्ष के लिए एक विशेष सहायता धरती पर आयी है; आओ, अहंकार पर विजय प्राप्त करने और प्रकाश में उभर आने के लिए हम इसका लाभ उठायें।

१ जनवरी १९७२

'**श्रीमातृवाणी**', खण्ड १३, पृ. १६-१७

श्रीमाँ 'सावित्री' पर

सावित्री है
श्रीअरविन्द की
अन्तर्दृष्टि का परम अन्तःप्रकाश

*

'सावित्री' के बारे में

१. लिखने वाले व्यक्ति की आध्यात्मिक अनुभूतियों का दैनिक विवरण।
२. जो लोग पूर्णयोग का अनुसरण करना चाहते हैं उनके लिए मार्गदर्शन करने वाली एक पूर्ण योग-पद्धति।
३. भगवान् की ओर आरोहण करती हुई 'धरती' का योग।
४. दिव्य जननी ने जो शरीर धारण किया है और धरती पर जिस अविद्या और मिथ्यात्व में अवतार लिया है, अपने-आपको उसके अनुकूल बनाने में उनकी अनुभूतियाँ।

*

सच्चा तरीक़ा है एक बार में थोड़ा-सा एकाग्रता के साथ पढ़ना, मन जहाँ तक हो सके नीरव रहे, समझने के लिए सक्रिय रूप से प्रयास किये बिना, ऊपर की ओर को नीरवता में मुड़ा रहे और ज्योति के लिए अभीप्सा करे। धीरे-धीरे समझ आती जायेगी।

और फिर, दो-एक वर्ष में, तुम फिर से उसी चीज़ को पढ़ोगे और तुम जान जाओगे कि पहला सम्पर्क अस्पष्ट और अपूर्ण था, और यह कि सच्ची समझ बाद में, उसे क्रियात्मक रूप देने का प्रयास करने के बाद आती है।

*

सावित्री का हर एक पद अन्तःप्रकाश से आया हुआ मन्त्र है और मनुष्य ने ज्ञान की दिशा में जो कुछ पाया है उस सबसे बहुत आगे है और इसमें शब्द इस तरह से व्यक्त और व्यवस्थित किये गये हैं कि लय का निनाद तथा सुरीलापन तुम्हें ध्वनि के मूल, अर्थात् ॐ तक ले जाते हैं...।

*

श्रीमाँ ने मोना दा से एक बार कहा था—तुम्हें *सावित्री* को ऊँचे स्वर में और धीरे-धीरे पढ़ना चाहिये, ताकि उसके गभीर स्पन्दन, उसकी लय और उसके संगीत से उत्पन्न मान्त्रिक प्रभाव सीधा तुम्हारे शरीर, मांसपेशियों, स्नायुओं, कोषाणुओं तथा तुम्हारी सम्पूर्ण सत्ता के रोम-रोम में प्रवेश कर व्याप जाये।

*

(श्रीमाँ के साथ मोना दा विभिन्न विषयों पर बातचीत किया करते थे। *सावित्री* पर भी माँ ने उनसे बहुत कुछ कहा था। उस सबको उन्होंने बाद में स्मृति के सहारे लिख कर माँ को दिखलाया था। माँ ने स्वयं उसे कुछ सँवारा और अपने आशीर्वाद भी दिये और अपने हस्तलेख में फ्रेंच में लिख दिया —'Compte-rendu. Noté mémoire'—(स्मृति के आधार पर लिखा विवरण)। साथ ही किसी शिष्य से माँ ने एक बार कहा था—*बहुत वर्ष पहले मैंने 'सावित्री' के बारे में मोना सरकार को विस्तार से समझाया था और मेरी कही बातों को उसने फ्रेंच में उतार लिया था। कुछ समय पहले मैंने वह देखा था और सब मिला कर उसने जो कुछ लिखा वह मुझे ठीक लगा।*

मोना दा की वह बातचीत यहाँ प्रस्तुत है।—सं.)

सावित्री पर श्रीमाँ के साथ हुआ वार्तालाप

क्या तुम *सावित्री* पढ़ते हो?

जी हाँ, माताजी।

तुमने पूरा काव्य पढ़ा है?

जी हाँ, माताजी, मैंने उसे दो बार पढ़ा है।

तुमने जो कुछ पढ़ा उसके सार को समझ पाये?

अधिक नहीं, लेकिन मुझे यह काव्य अच्छा लगता है और इसीलिए पढ़ता हूँ।

तुम अगर *सावित्री* को समझ नहीं पाते तो कोई हर्ज़ नहीं है, उसे हमेशा पढ़ा करो। तुम देखोगे कि हर बार जब तुम उसे पढ़ोगे तो तुम्हें उसमें नया अन्तःप्रकाश मिलेगा। हर बार तुम्हें एक नयी झाँकी मिलेगी, हर बार एक नयी अनुभूति होगी। जो चीज़ें पहले न दिखायी दी थीं, जिन चीज़ों को पहले तुम समझ न पाये थे, वे सामने उभरेंगी और सहसा स्पष्ट हो जायेंगी। शब्दों और पंक्तियों के द्वारा हमेशा एक अप्रत्याशित अन्तर्दर्शन सामने आता है। हर बार जब तुम इसे पढ़ने और समझने की कोशिश करोगे तो देखोगे कि कोई नयी चीज़ जोड़ दी गयी है, कोई चीज़ जो पीछे छिपी हुई थी वह स्पष्ट और सजीव रूप में प्रकट हो गयी है। मैं कहती हूँ कि तुम जिन पदों को पहले पढ़ चुके हो वे हर बार फिर से पढ़ने पर एक नये प्रकाश में दीखेंगे। यह हमेशा होता है। तुम्हारी अनुभूति हमेशा अधिक समृद्ध होती जाती है। हर पग पर एक अन्तःप्रकाश मिलता है।

लेकिन तुम्हें *सावित्री* को ऐसे नहीं पढ़ना चाहिये जैसे दूसरी पुस्तकों या अख़बारों को पढ़ते हो। तुम्हें एक ख़ाली सिर के साथ, कोरे, रिक्त मन के साथ पढ़ना चाहिये जिसमें कोई विचार न हो। तुम्हें बहुत एकाग्र होना चाहिये, रिक्त, अचञ्चल और खुले हुए रहो; तब शब्द, लय, स्पन्दन सीधे इस कोरे काग़ज़ पर आ जायेंगे और मस्तिष्क पर अपनी छाप लगा देंगे और तुम्हारे किसी प्रयास के बिना अपने-आपको समझा देंगे।

तुम्हें सबसे ऊँचे शिखरों तक पहुँचाने के लिए एक *सावित्री* ही काफ़ी है। अगर तुम सचमुच *सावित्री* पर ध्यान करना जानो तो तुम्हें जितनी सहायता की ज़रूरत है वह सब मिल जायेगी। क्योंकि जो इस मार्ग का अनुसरण करना चाहता है उसके लिए यह एक ठोस सहायता है, मानों स्वयं भगवान् तुम्हें हाथ पकड़ कर नियत लक्ष्य की ओर लिये जा रहे हों। और तब इसमें हर एक प्रश्न का, वह चाहे कितना भी व्यक्तिगत क्यों न हो, उत्तर मौजूद होगा। इसमें हर एक कठिनाई का हल है। वास्तव में योग करने के लिए जो कुछ ज़रूरी है वह सब इसमें है।

उन्होंने सारा विश्व इस एक पुस्तक में भर दिया है। यह एक अद्‌भुत कृति है, बहुत शानदार और अतुलनीय पूर्णतावाली।

सावित्री लिखने से पहले श्रीअरविन्द ने मुझसे कहा था: "मुझे एक नया साहस-कार्य करने की प्रेरणा मिल रही है। शुरू में मैं सकुचा रहा था लेकिन अब मैंने निश्चय कर लिया है। लेकिन अब भी नहीं जानता कि मैं कहाँ तक सफल होऊँगा। मैं सहायता के लिए प्रार्थना करता हूँ।" और तुम जानते हो, वह साहस-कार्य क्या था? वह था—शुरू करने से पहले, मैं तुम्हें सावधान कर दूँ, यह उनके बोलने का तरीक़ा था, नम्रता और दिव्य विनय से इतना भरा हुआ। वे कभी दबाव डालते हुए नहीं बोलते थे। और जिस दिन उन्होंने वास्तव में यह काम शुरू किया तो उन्होंने मुझसे कहा: "मैंने अनन्त की विशालता में अपने-आपको एक बिना पतवार की नाव में छोड़ दिया है।" और एक बार शुरू करके वे बिना रुके पन्ने-पर-पन्ने लिखते चले जाते थे मानों वह ऐसी चीज़ थी जो वहाँ ऊपर पहले ही तैयार हो चुकी थी, उन्हें बस उसे यहाँ काग़ज़ों पर स्याही से लिप्यन्तरित करना था।

सच तो यह है कि पूरी-की-पूरी *सावित्री* उच्चतम क्षेत्र से सामूहिक रूप से उतरी है और श्रीअरविन्द की प्रतिभा ने उसे श्रेष्ठ, भव्य शैली में पंक्तिबद्ध किया है। कभी-कभी पूरी-की-पूरी पंक्तियाँ अन्तःप्रकाश के द्वारा प्रकट हुईं और श्रीअरविन्द ने उन्हें उसी तरह रखा है। उन्होंने बहुत अधिक, अनथक परिश्रम किया था ताकि चेतना यथासम्भव ऊँचे-से-उँचे शिखर से आ सके। और क्या कृति दी है उन्होंने! हाँ, यह सचमुच अपने-आपमें सच्ची सृष्टि है। यह एक ऐसी कृति है जिसकी तुलना ही नहीं की जा सकती। उसमें हर एक चीज़ है और वह ऐसे सरल, स्पष्ट रूप में रखी गयी है जो पूरी तरह समस्वर, सुस्पष्ट और शाश्वत रूप में सत्य है। मेरे बालक, मैंने इतनी सारी चीज़ें पढ़ी हैं, लेकिन मैंने ऐसी कोई चीज़ नहीं देखी जिसकी तुलना *सावित्री* से की जा सके। मैंने यूनानी, लैटिन, अंग्रेज़ी और फ़्रेंच तथा जर्मन की सभी श्रेष्ठतम कृतियाँ पढ़ी हैं, पूर्व और पश्चिम के सभी महान् सर्जन पढ़े हैं जिनमें सब महाकाव्य भी आ जाते हैं लेकिन, मैं फिर दोहराती हूँ, मैंने कहीं कोई चीज़ ऐसी नहीं देखी जिसकी *सावित्री* से

तुलना हो सके। मुझे ये सभी साहित्यिक रचनाएँ ख़ाली, नीरस और खोखली प्रतीत होती हैं, जिनमें कुछ विरल अपवादों को छोड़ कर, कोई गहरी वास्तविकता नहीं है और ये अपवाद भी *सावित्री* के अंश-मात्र के बराबर हैं। ओह! क्या भव्यता है! क्या प्राचुर्य है! क्या वास्तविकता है! उन्होंने एक अमर और शाश्वत वस्तु की रचना की है। मैं तुमसे फिर कहती हूँ, सारी दुनिया में इसके जैसी कोई और चीज़ नहीं है। अगर तुम वास्तविक सत्य के अन्तर्दर्शन को एक ओर रख दो, अर्थात्, उस तात्त्विक अनिवार्य वस्तु को अलग कर दो जो अन्तःप्रेरणा का हार्द है, और केवल पदों पर ही ध्यान दो, तो भी तुम उन्हें अनोखा और उच्चतम शास्त्रीय कोटि का पाओगे। उन्होंने एक ऐसी चीज़ की रचना की है जिसकी मनुष्य कल्पना भी नहीं कर सकता। क्योंकि उसमें सब कुछ है, सब कुछ।

तो यह कहा जा सकता है कि *सावित्री* एक अन्तःप्रकाश है, एक ध्यान है, यह अनन्त की, शाश्वत की खोज है। अगर इसे अमरता की इस अभीप्सा के साथ पढ़ा जाये तो इसे पढ़ना ही अमरता की ओर पथ-प्रदर्शन करेगा। *सावित्री* पढ़ने का अर्थ है योग करना, आध्यात्मिक एकाग्रता। भगवान् को पाने के लिए जो कुछ आवश्यक है वह सब इसमें मिल सकता है। योग का प्रत्येक पग यहाँ पर अंकित है जिसमें और सभी योगों के रहस्य भी आ गये। निश्चय ही, यदि तुम सच्चाई के साथ उस चीज़ का अनुसरण करो जो यहाँ पद-पद में व्यक्त की गयी है तो अन्त में तुम अतिमानसिक योग के रूपान्तर तक जा पहुँचोगे। सचमुच यह वह पथ-प्रदर्शक है जो कभी भूल नहीं करता, जो तुम्हें कभी छोड़ नहीं देता। जो लोग इस मार्ग का अनुसरण करना चाहते हैं उन्हें उसकी सहायता हमेशा मिलती है। *सावित्री* का हर एक पद अन्तःप्रकाश से आया हुआ मन्त्र है और मनुष्य ने ज्ञान की दिशा में जो कुछ पाया है उस सबसे बहुत आगे है। मैं फिर कहती हूँ, शब्द इस तरह से व्यक्त और व्यवस्थित किये गये हैं कि लय का निनाद तथा सुरीलापन तुम्हें ध्वनि के मूल, अर्थात् ॐ तक ले जाता है।

मेरे बालक, हाँ, उसमें सब कुछ है : रहस्यवाद, गुह्यवाद, दर्शन, क्रम-विकास का इतिहास, मानव का, देवों का, सृष्टि का, प्रकृति का इतिहास उसमें है। उसमें बताया गया है कि सृष्टि कैसे पैदा हुई, क्यों और किस उद्देश्य से पैदा हुई और उसकी नियति क्या है। तुम उसमें अपने सभी प्रश्नों के सब उत्तर पा सकते हो। उसमें हर चीज़ की व्याख्या की गयी है, यहाँ तक कि मनुष्य का और क्रम-विकास का भविष्य भी बतलाया गया है जिसके बारे में अभी तक कोई कुछ नहीं जानता। उन्होंने वह सब सुन्दर, स्पष्ट शब्दों में बताया है ताकि आध्यात्मिक साहस-कार्य करने के इच्छुक, जो संसार के रहस्यों को सुलझाना चाहते हैं, वे उसे ज़्यादा आसानी से समझ सकें। लेकिन यह रहस्य शब्दों और पंक्तियों के पीछे भली-भाँति छिपा हुआ है और खोज सकने के लिए तुम्हें सत्य-चेतना के अपेक्षित स्तर तक उठना चाहिये। सभी भविष्यवाणियाँ, और जो कुछ होने वाला है वह सब यहाँ अद्‌भुत और यथार्थ स्पष्टता के साथ प्रस्तुत है। श्रीअरविन्द यहाँ तुम्हें 'सत्य' को जानने की चाबी देते हैं, 'चेतना' को खोजने की, विश्व क्या है इस समस्या को हल करने की चाबी देते हैं। उन्होंने यह भी बताया है कि निश्चेतना के द्वार कैसे खोले जायें ताकि प्रकाश वहाँ प्रविष्ट होकर उसका रूपान्तर कर सके। उन्होंने मार्ग दिखाया है, अपने-आपको अज्ञान से मुक्त करके सीधे अतिचेतन तक चढ़ने का रास्ता दिखाया है, उन्होंने हर

एक स्तर, चेतना का हर एक लोक दिखाया है और यह बताया है कि उन पर कैसे चढ़ा जा सकता है, कि मृत्यु की बाधा को पार करके कैसे अमरता तक पहुँचा जा सकता है। तुम इसमें सारी यात्रा विस्तार से पा सकते हो और जैसे-जैसे तुम आगे बढ़ोगे तुम नयी चीज़ें देखोगे जो अभी तक मनुष्यों के लिए अज्ञात हैं। तो यह है *सावित्री*, और इस सबसे बहुत अधिक। *सावित्री*-पाठ एक सच्ची अनुभूति है। मनुष्य ने जितने भी रहस्य हस्तगत किये हैं उन सबको श्रीअरविन्द ने प्रकट कर दिया है और उस सबको भी जो भविष्य के गर्भ में है। यह सब *सावित्री* की गहराई में है। लेकिन इस सबको खोजने के लिए ज्ञान चाहिये, चेतना के लोकों की अनुभूति, अतिमानस की अनुभूति, यहाँ तक कि मृत्यु पर विजय की अनुभूति भी होनी चाहिये। उन्होंने सभी अवस्थाओं का आलेखन किया है, प्रत्येक पग पर निशान लगाया है ताकि पूर्ण योग में सर्वांगीण प्रगति हो सके।

यह सब स्वयं उनकी अनुभूति है, और बहुत आश्चर्य की बात यह है कि यह मेरी अपनी अनुभूति भी है। यह मेरी साधना है जिसे उन्होंने अंकित किया है। प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक घटना, प्रत्येक उपलब्धि, सारे-का-सारा वर्णन, यहाँ तक कि रंग भी ठीक वैसे ही हैं जैसे कि मैंने देखे थे और शब्द तथा वाक्य ठीक वही हैं जो मैंने सुने थे—और यह सब पुस्तक पढ़ने से पहले। बाद में मैंने *सावित्री* कई बार पढ़ी है, लेकिन पहले जब वे लिख रहे थे तो वे मुझे पढ़ कर सुनाया करते थे। हर रोज़ सवेरे मैं उनसे *सावित्री* सुनती थी। वे रात को लिखते थे और सवेरे मुझे सुनाते थे। और मैंने एक अजीब बात देखी। दिन-पर-दिन वे जो अनुभूतियाँ मुझे सवेरे पढ़ कर सुनाते थे वे वही होती थीं, अक्षरशः वही, जिन्हें मैं पिछली रात देख चुकी होती थी। हाँ, सभी वर्णन, रंग, मेरे देखे हुए चित्र, मेरे सुने हुए शब्द, सब कुछ, सबको वे कविता में, चमत्कारिक कविता में प्रस्तुत करते थे। हाँ, वे मेरी पिछली रात की ठीक-ठीक अनुभूतियाँ होती थीं जिन्हें वे अगले सवेरे मेरे आगे पढ़ा करते थे। और यह संयोग से एकाध दिन नहीं हुआ, लगातार दिन-पर-दिन यही होता रहता था। और हर बार मैं, जो कुछ वे सुनाते थे उसकी, जो कुछ मैंने पहले देखा था उससे तुलना करती थी। दोनों चीज़ें हमेशा एक होती थीं। मैं फिर से कहती हूँ, यह बात नहीं है कि मैं अपनी अनुभूतियाँ उन्हें सुनाती थी और वे उन्हें लिपिबद्ध कर देते थे। नहीं, वे पहले ही जानते थे कि मैंने क्या देखा है, उन्होंने मेरी अनुभूतियों को विस्तार से प्रस्तुत किया और यही उनकी अनुभूतियाँ भी थीं। और फिर यह अज्ञात में, या यूँ कहें अतिमन में हम दोनों की साहस-यात्रा का चित्र है।

ये ऐसी अनुभूतियाँ हैं, ऐसी वास्तविकताएँ और विश्व से परे के सत्य हैं जिन्हें वे जी चुके हैं। उन्होंने इन सबका उसी तरह अनुभव किया था जैसे तुम भौतिक रूप में सुख-दुःख का अनुभव करते हो। वे निश्चेतना के अन्धकार में, मृत्यु के पास-पास चले, उन्होंने सर्वनाश के दुःख सहे और कीचड़ में से, संसार के दुःख-दारिद्र्य में से निकल कर परम प्राचुर्य में साँस लेते हुए वे परम आनन्द में प्रविष्ट हुए। उन्होंने इन सब क्षेत्रों को पार किया, भौतिक रूप में इतना अधिक दुःख पाया और सहन किया जिसकी कोई कल्पना नहीं कर सकता। आज तक किसी ने भी इतना अधिक दुःख सहन नहीं किया है। उन्होंने दुःख को स्वीकार किया ताकि दुःख को परम प्रभु के साथ ऐक्य के आनन्द में बदल

सकें। यह एक और अद्वितीय वस्तु है जिसकी तुलना संसार के इतिहास में किसी से नहीं की जा सकती। यह एक ऐसी चीज़ है जो पहले कभी नहीं हुई। वे अज्ञात का पथ खोजने वाले पहले व्यक्ति हैं। उन्होंने इस पथ को इसलिए खोजा है ताकि हम अतिमानस की ओर निश्चिति के साथ बढ़ सकें। उन्होंने हमारे लिए काम आसान कर दिया है। *सावित्री* रूपान्तर का पूर्ण योग है और यह योग पार्थिव चेतना में पहली बार प्रकट हो रहा है।

और मेरा ख़याल है, मनुष्य उसे ग्रहण करने के लिए अभी तक तैयार नहीं है। यह उसके लिए बहुत अधिक ऊँचा और बहुत अधिक विशाल है। मनुष्य उसे समझ नहीं सकता, उसे पकड़ नहीं पाता क्योंकि *सावित्री* को मन के द्वारा नहीं समझा जा सकता। उसे समझने और आत्मसात् करने के लिए आध्यात्मिक अनुभूतियों की ज़रूरत है। तुम योग-मार्ग पर जितना आगे बढ़ोगे उतना ही अधिक और उतनी ही ज़्यादा अच्छी तरह आत्मसात् कर सकोगे। नहीं, यह ऐसी चीज़ है जिसका मूल्यांकन भविष्य में ही हो सकेगा। यह आगामी कल की कविता है जिसके बारे में श्रीअरविन्द ने अपनी पुस्तक 'भावी कविता' में लिखा है। यह बहुत अधिक सूक्ष्म, बहुत अधिक परिष्कृत है—*सावित्री* मन में या मन के द्वारा नहीं, ध्यान में प्रकट होती है।

और लोगों में यह धृष्टता है कि वे इसकी तुलना वर्जिल या होमर की कृतियों के साथ करते और इसे घटिया बताते हैं। वे समझते नहीं हैं, वे समझ नहीं सकते! वे जानते ही क्या हैं? कुछ भी नहीं। और उन्हें समझाने की कोशिश करना बेकार है। लोग यह जान पायेंगे कि यह क्या है परन्तु सुदूर भविष्य में। केवल नयी जाति, जिसके अन्दर नयी चेतना होगी, वही इसे समझ सकेगी। मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि नील गगन के नीचे ऐसी कोई चीज़ नहीं है जिसकी तुलना *सावित्री* से की जाये। यह रहस्यों का भी रहस्य है। उनकी लिखी हुई पंक्तियों की संख्या को ही देखा जाये तो भी यह महाकाव्य से ऊपर है, साहित्य से ऊपर है, काव्य से ऊपर है, अन्तर्दर्शन से ऊपर है, यह अतिकृति है। नहीं, ये मानव शब्द *सावित्री* का वर्णन करने के लिए काफ़ी नहीं हैं। उसका वर्णन करने के लिए अत्युक्तियों और अतिशयोक्तियों की ज़रूरत है। यह महाकाव्य नहीं, अति-महाकाव्य है। *सावित्री* क्या है इसे कोई भी शब्द अभिव्यक्त नहीं कर सकते, कम-से-कम मुझे तो ऐसे शब्द नहीं मिलते। इसका बहुत अधिक मूल्य है, आध्यात्मिक मूल्य तथा अन्य सब प्रकार के मूल्य। वह अपनी विषय-वस्तु में शाश्वत है और अपने आकर्षण में अनन्त है। वह अपने प्रस्तुतीकरण के रूप और शक्ति में एक अद्वितीय वस्तु है। तुम इसके साथ जितने अधिक सम्पर्क में आओगे उतने ही अधिक ऊँचे उठते जाओगे। वाह! सचमुच यह भी कुछ चीज़ है। उन्होंने मनुष्य के लिए यह सबसे सुन्दर और अधिक-से-अधिक ऊँची वस्तु छोड़ी है। यह क्या है? मनुष्य इसे कब जानेगा? वह सत्यमय जीवन कब जी सकेगा? वह अपने जीवन में इसे कब स्वीकार कर सकेगा? यह जानना बाक़ी है।

मेरे बालक, जब तुम रोज़ *सावित्री* पढ़ो तो ठीक तरह से, उचित वृत्ति के साथ पढ़ो। पृष्ठ खोलने से पहले ज़रा एकाग्र होओ और जहाँ तक बन पड़े मन को ख़ाली रखो, बिलकुल ख़ाली, एक विचार भी न हो। सीधा मार्ग हृदय के द्वारा जाता है। मैं कहती हूँ, अगर तुम वास्तव में इस अभीप्सा के साथ

एकाग्र होने की कोशिश करो तो तुम एक ज्वाला जगा सकते हो, कुछ ही समय में चैत्य की, पवित्रता की ज्वाला जगा सकते हो, शायद कुछ ही दिनों में। जो तुम साधारणतः नहीं कर सकते उसे *सावित्री* की सहायता से कर सकोगे। कोशिश करके देखो। अगर तुम इस मनोवृत्ति के साथ, अपनी चेतना के पीछे इस चीज़ के साथ पढ़ो मानों यह श्रीअरविन्द के प्रति समर्पण है तो तुम देखोगे कि चीज़ कितनी भिन्न है, कितनी नयी है। जानते हो, यह पूरी तरह आवेशित है, चेतना से आवेशित है, मानों *सावित्री* कोई सत्ता हो, एक सच्चा पथ-प्रदर्शक हो। मैं कहती हूँ, जो योग करना चाहता हो और सच्चाई के साथ इसकी आवश्यकता अनुभव करता हो वह *सावित्री* की सहायता से योग-सोपान की ऊँची-से-ऊँची सीढ़ियों तक पहुँच जायेगा और उस रहस्य को पा लेगा जिसका प्रतीक है *सावित्री*—और यह बिना किसी गुरु की सहायता के। वह किसी भी जगह योग कर सकेगा। उसके लिए अकेली *सावित्री* ही पथ-प्रदर्शक होगी, उसे जिस किसी चीज़ की ज़रूरत होगी वह उसे *सावित्री* में मिल जायेगी। अगर वह कठिनाई के सामने बहुत शान्त रहे या जब उसकी समझ में न आता हो कि आगे बढ़ने के लिए किस ओर मुड़े और बाधाओं को किस तरह पार करे, उन सब हिचकिचाहटों और अनिश्चितताओं के समय, जो हमें हर क्षण घेरे रहती हैं, उसे आवश्यक निर्देश मिल जायेंगे और आवश्यक ठोस सहायता मिल जायेगी। अगर वह पूरी तरह शान्त रहे, खुला रहे और सच्चाई के साथ अभीप्सा करे तो उसे मानों हमेशा हाथ पकड़ कर आगे ले जाया जायेगा। अगर उसमें श्रद्धा है, अपने-आपको देने का संकल्प है और तात्त्विक सच्चाई और निष्ठा है तो वह अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचेगा।

वास्तव में *सावित्री* बहुत ठोस, सजीव, पूरी तरह से भरी हुई, चेतना से भरपूर है। वह सभी मानव-दर्शनों तथा धर्मों से परे का परम ज्ञान है। वह आध्यात्मिक मार्ग है, वह योग है, एक शरीर में तपस्या, साधना आदि सब कुछ है। *सावित्री* में असाधारण शक्ति है, वह, जो ग्रहण कर सके, उसके लिए स्पन्दन, चेतना की हर अवस्था के सच्चे स्पन्दन छोड़ती है। वह अतुलनीय है, वह अपने पूरे प्राचुर्य में सत्य है, वह सत्य जिसे श्रीअरविन्द धरती पर उतार कर लाये हैं। मेरे बच्चे, तुम्हें उस रहस्य को पाने की कोशिश करनी चाहिये जिसका प्रतिनिधित्व *सावित्री* करती है, उस भविष्यसूचक सन्देश को जानने की कोशिश करनी चाहिये जिसे श्रीअरविन्द यहाँ पर हमारे लिए प्रकट करते हैं। तुम्हारे सामने यही कार्य है। यह कठिन है परन्तु कष्ट उठाने-योग्य है।

आशीर्वाद।

५ नवम्बर १९६७

सावित्री एकदम कहीं और ही से उतरी है।
और मेरे ख़याल से सावित्री के बारे में बात करना ही सबसे महत्त्वपूर्ण विषय है।
श्रीमाँ

सावित्री शक्ति देती है

अगर तुम उदास हो, अगर तुम अपने-आपको दुःखी अनुभव करते हो, अगर तुम जो कुछ हाथ में लेते हो उसी में असफलता हाथ लगती है, चाहे तुम कितना भी प्रयास कर लो, फिर भी जो होता है वह हमेशा तुम्हारी आशाओं के विपरीत होता है—अगर स्थिति यहाँ तक पहुँच गयी है कि तुम्हें ग़ुस्सा आ जाता है, जीवन घृणित हो उठता है, और तुम दुःखी रहते हो तो तुरन्त *सावित्री* उठा लो और क्षण-भर की एकाग्रता के बाद कोई-सा पृष्ठ खोलो और पढ़ना शुरू कर दो। तुम देखोगे कि तुम्हारा सारा दुःख धुएँ की तरह ग़ायब हो जाता है और तुम्हारे अन्दर दुःख की बुरी-से-बुरी उदासी और अँधेरे पर विजय पाने की शक्ति आ जाती है। तुम्हें उस चीज़ की प्रतीति ही न होगी जो तुम्हें यातना दे रही थी। उसकी जगह तुम्हें एक विचित्र सुख का अनुभव होगा। चेतना का एक ऐसा पलटा आयेगा, हर चीज़ पर विजय पाने वाली शक्ति और ऊर्जा आयेगी, मानों अब कुछ भी असम्भव नहीं है। और तुम उस अक्षय आनन्द का अनुभव करोगे जो सबको पवित्र करता है। कुछ ही पंक्तियाँ पढ़ो, इतना ही तुम्हारी अन्तरतम सत्ता के साथ सम्पर्क स्थापित करने के लिए काफ़ी है। ऐसी है *सावित्री* की असाधारण शक्ति।

या फिर कुछ पंक्तियाँ पढ़ने के बाद अगर तुम गहराई में एकाग्र होओ तब भी तुम्हें उस चीज़ का समाधान मिल जायेगा जो तुम्हें पीड़ा पहुँचा रही थी। तुम बिना सोचे-विचारे यूँ ही कहीं से भी *सावित्री* को खोलो और तुम्हें अपनी समस्या का उत्तर मिल जायेगा।

यह श्रद्धा और सरलता से करो, परिणाम निश्चित है।

आशीर्वाद।

१९६८

—मोना सरकार

सावित्री की महत्ता अपरम्पार है।
इसका विषय सार्वभौम है।
इसका अन्तर्दर्शन भविष्य-वाणी है।
इसके वातावरण में बिताया गया समय व्यर्थ नहीं जाता।

सावित्री अद्‌भुत महाकाव्य है, उन्हें हर एक चीज़ का पूर्वाभास मिल गया था, उन्होंने हर एक चीज़ देख ली थी, हर एक, पूरी तरह से सब कुछ, एक भी ऐसा बिन्दु नहीं है जो उन्होंने अज्ञात छोड़ दिया हो!

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से — *२० अप्रैल १९६३*

सावित्री कौन है

सावित्री सचमुच वैश्व माँ—शाश्वत वैश्व माँ—का संघनित, संकेन्द्रित रूप है, उन माँ का जो शाश्वत काल से सकल ब्रह्माण्डों की माँ हैं, जिन्होंने 'पृथ्वी' के उद्धार के लिए पार्थिव रूप धारण किया है। और सत्यवान है, 'पृथ्वी' की अन्तरात्मा, पृथ्वी का जीव। अतः, जब प्रभु कहते हैं, "तुम जिससे प्रेम करती हो और जिसको तुमने चुना है", तो इसका अर्थ पृथ्वी से है। वहाँ सभी ब्योरे हैं! जब वह वापस धरती पर उतरती है, जब अन्ततः 'मृत्यु' उसके सम्मुख घुटने टेक देती है, जब सब कुछ ठीक हो जाता है और 'परम प्रभु' उससे कहते हैं, 'जाओ, जिसे तुमने चुना है, उसके साथ जाओ,' श्रीअरविन्द इसका वर्णन कैसे करते हैं? वे कहते हैं कि वह सत्यवान की आत्मा को अपनी बाँहों में एक छोटे बच्चे की भाँति सहेज लेती है और विभिन्न लोकों से गुज़रती हुई धरती पर लौट आती है। *सावित्री* में श्रीअरविन्द ने सब कुछ दिया है! इसे आसानी से समझने के लिए वे एक भी ब्योरा देना नहीं भूले—उस व्यक्ति के लिए जो यह जानता है कि इसे कैसे समझा जाये। और जब सावित्री पृथ्वी पर पहुँचती है, सत्यवान अपनी सम्पूर्ण मानव-महिमा को पुनः प्राप्त कर लेता है।

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से २२ जनवरी १९६१

हम *सावित्री* की कहानी लें जो इसकी व्याख्या करती है : वैश्व माता विश्व के हर कोने में उपस्थित हैं और वे वहाँ सदैव कार्यरत रहती हैं, लेकिन केवल पृथ्वी ही ऐसा स्थान है जहाँ क्रमविकास को उसकी पराकाष्ठा पर पहुँचाने और उसके लक्ष्य तक ले जाने के लिए समस्त कर्मों को एक ठोस रूप और आकार दिया जाता है। वे अन्य स्तरों की तरह वायवीय नहीं होते। हाँ तो, पहले वैश्व माँ के प्रतिनिधि-रूप में उतरी एक सत्ता जो धरती को स्वयं को तैयार करने के लिए हमेशा उसकी सहायता के लिए उपस्थित रहती है; फिर जब तैयारी पूरी हो जाये तब अपने कार्य को सम्पन्न करने के लिए अवतरित होंगी स्वयं वैश्व 'माँ'। और यह वे सत्यवान के साथ करती हैं—सत्यवान धरती की अन्तरात्मा हैं। वे धरती की अन्तरात्मा के साथ बहुत घनिष्ठ रूप में जुड़ी रहती हैं और एक साथ मिल कर वे कार्य करते हैं। उन्होंने अपने कार्य के लिए धरती की अन्तरात्मा को यह कहते हुए चुना है कि 'मैं **यहाँ**, इस स्थान पर अपना कार्य करूँगी।' और कहीं *(श्रीमाँ उच्चतर चेतना के लोकों की ओर संकेत करती हैं)*, बस **रहना** पर्याप्त होता है, और वहाँ चीज़ें बस **बनी रहती हैं**। यहाँ, धरती पर तुम्हें कार्य करना होता है।

निस्सन्देह, स्पष्ट रूप में यहाँ वैश्व प्रतिक्रियाएँ और प्रभाव होते रहते हैं, लेकिन कार्य को यहीं सम्पन्न करना है, कार्यस्थल यही है, पृथ्वी ही है। इसीलिए वैश्व तथा उसके परे की परमानन्दीय स्थिति तथा काल के परे की अति-वैश्व शाश्वतता में निवास करने के स्थान पर वे कहती हैं, 'नहीं, मैं अपना कार्य यहीं करूँगी, मैंने यहीं कार्य करने का चुनाव लिया है।'... 'मैं यहीं काम करना चाहती हूँ, और जब सब कुछ तैयार होगा, जब पृथ्वी तैयार होगी, जब मानवता तैयार होगी, (भले इस तैयारी के बारे में कोई भी सचेतन न हो), जब **महान्, निर्णायक घड़ी आयेगी,** हाँ, तो... मैं अपना कार्य सम्पन्न करने के लिए अवतरित होऊँगी।'

यही है कहानी।

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से २८ जुलाई १९६१

एक नूतन अभिनव दिव्य जाति के ये प्रथम-जात हैं।
यह युगल अवतारी चित्-शक्ति प्रभु के द्वारों को खोल देगी,
अनन्त सत्य-मन इस पार्थिव काल का स्पर्श करेगा।
इस नश्वर मानव में तब अतिमानव जाग जायेगा
और गुह्य अर्धदेव को अभिव्यक्त करेगा
या 'प्रभु-प्रकाश' और 'भागवत शक्ति' में विकसित होगा,
अन्तरस्थ गर्भ-गृह में गुह्य देव को प्रकट करेगा।

सावित्री, पृ. ७०५

'सावित्री' से चुने हुए कुछ उद्धरण

('सावित्री' के सभी उद्धरण श्रीमती सुषमा गुप्ता द्वारा अनूदित सावित्री पुस्तक से लिये गये हैं—सं.)

पार्थिव प्रकृति का परिवर्तन

इस पार्थिव प्रकृति को परिवर्तन के लिए सहमत करना अति कठिन है;
नश्वरता शाश्वत का स्पर्श सह नहीं पाती है;
यह विशुद्ध दिव्य असहिष्णुता से भय खाती है
उसके आकाशीय अग्नि और अग्निल आक्रमण से डरती है;
शाश्वत के शोकहीन हर्ष-प्रसाद पर बड़बड़ाती है;
लगभग घृणा से भर यह उसकी लायी ज्योति को ठुकरा देती है;
दिव्य सत्य की नग्न ऊर्जा से यह काँपती है
और इसकी परिपूर्ण सत्य-वाणी की मधुरिमा और शक्ति से घबराती है।
अपने पाताली गर्त के विधान को उच्चताओं पर आरोपित कर,
यह अपनी पंकिलता से स्वर्ग के दूतों को मलिन कर देती है:
इसकी पतिता प्रकृति के काँटे इसके सुरक्षा-कवच हैं
जिन्हें यह दुःखहर्ता के 'कृपा'-करों में चुभाती है;
यह प्रभु के पुत्रों को मृत्यु और पीड़ा को साथ ले भेंटती है।

सावित्री, पृ. ७

अवतीर्ण भगवती माँ का व्यक्तित्व

उसके अन्दर सब कुछ एक श्रेष्ठता को दर्शाता था।
वह पृथ्वी की विशालता के समीप और स्वर्ग के साथ अभिन्न थी,
उसकी युवा उदार-दृष्टिमयी आत्मा उन्नत और वेगवती थी
जो श्री और शान्ति के लोकों के मध्य यात्रा करती
उच्च मन के मार्गों से परे अजात पदार्थों तक पहुँच जाती।
उसकी आत्म-निष्ठा गभीर और संकल्प-शक्ति दृढ़ थी;
उसका मानस था शुभ्र-सत्य का एक सागर,
बहाव आवेशपूर्ण था, किन्तु एक भी लहर कलुषित नहीं थी।
मानों एक गुह्य और उत्साही नृत्य में
विशुद्ध आत्माह्लादों की एक पुजारिन
सत्य के आत्म-उद्घाटित अन्तर से प्रेरित और शासित होकर
देवों की किसी भविष्यदर्शी कन्दरा में थिरकती हो,
हर्षोल्लास के हाथों में एक नीरवता का हृदय थी
जिसमें सर्जन की समृद्ध धड़कनें बसी थीं,
उषा की उपमा-सम उसकी देहयष्टि

जो उसकी अवगुण्ठित दिव्यता-हेतु एक कक्ष-सम लगती
या परात्पर की वस्तुएँ दर्शाती एक मन्दिर का स्वर्णद्वार थी।
काल में जन्मे उसके पैरों में अमर तानें थिरकतीं :
उसकी चितवन, उसकी मुस्कान दिव्य बोध को जगा देती
पार्थिव पदार्थ तक में, और उनकी उत्कट प्रसन्नता
मानव के जीवनों पर एक दिव्य-सौन्दर्य उँडेल देती।
एक विशाल आत्म-दान उसका स्वाभाविक सहज कर्म था :
सागर या आकाश के सम एक उदार-हृदया
अपने समीप आते सकल को अपनी महानता में लपेट लेती
और एक महत्तर जगत् के जैसी सबको अनुभूति देती :
उसकी सदय सुरक्षा सुहाती मृदु धूप थी,
उसका उन्नत भावावेश नील-गगन के समभाव की शान्ति थी।
जब एक सताये पक्षी-सम एक जीव व्यथित उड़ता फिरे,
थकित पंखों से संसारी तूफ़ानों से बचने का प्रयास करे,
तब उसके स्मृति-पटल पर सावित्री का वक्ष एक शान्त आश्रय-सम उभरता,
एक सुरक्षित नीड़-सम एक भव्य कोमल विश्राम का
जहाँ वह पुनः मधु-ज्वाल धाराओं में जीवन-पान कर सकता था,
प्रसन्नता का विस्मृत स्वभाव फिर से प्राप्त कर
सावित्री के उज्ज्वल स्वभाव के महिमाशाली परिवेश को अनुभव कर सकता था,
और उसकी स्नेही उष्णता और रंगीन राज्य में सुख को सँवार सकता था।
करुणा का एक सागर, एक प्रशान्त तपोवन,
उसकी अन्तर-सहायता स्वर्ग में एक द्वार खोल देती;
उसमें प्रेम इस विश्व से भी विशालतर था,
समस्त संसार उसके अकेले हृदय में शरण ले सकता था।

सावित्री, पृ. १४-१५

हमारे अन्दर की जादुई कुञ्जी

एक जादुई कुञ्जी अकस्मात् हाथ आ जाती है
जो आच्छादित अनिर्वचनीय परम के अकाल व्रत को हिला देती है :
एक प्रार्थना, एक महान् कर्म, एक तेजस्वी विचार
मानव की शक्ति को एक परात्पर दिव्य शक्ति से जोड़ सकता है।
तब चमत्कार जीवन का सामान्य नियम बन जाता है,
एक शक्तिशाली कार्य वस्तुओं की दिशा बदल सकता है;
एक अकेला विचार सर्वशक्तिशाली बन सकता है।
अभी तो यहाँ सब विश्व-प्रकृति की विशाल यान्त्रिकता ही लगता है;
जड़-भौतिकता के शासन का एक अनन्त दासत्व ही दिखता है

यह पहले से निर्धारित नियमों की एक अनम्य शृंखला ही है,
प्रकृति के दृढ़ और अपरिवर्तनीय स्वभाव का अनुकरण करने का विधान ही है,
उसके अचेत पर निपुण यान्त्रिक साधनों का साम्राज्य ही है
जो मानव की स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति के अधिकार को रद्द कर देता है।
इन मशीनों के मध्य में वह भी तो एक यन्त्र ही है
इसका मस्तिष्क एक 'पिस्टन पम्प' है जो विचारों के विभिन्न आकार फेंकता है,
एक धड़कता हृदय भावनाओं के नमूने काटता है;
एक संज्ञाहीन ऊर्जा एक आत्मा की कल्पना करती है।
अथवा इस संसार का आकार गुह्य संकेतों से प्रकट कर देता है
नियमों से बँधे एक दैव-योग को, जो अपनी चालों को दोहराया करता है
और जड़तत्त्व के खूँटे से एक पशु-समान बँधा चक्करों में घूमता रहता है।
असंगत घटनाओं की एक उद्देश्यहीन अनुक्रमों की शृंखला यहाँ है,
जिसको बुद्धि-विवेक एक मायावी बोध प्रदान कर देता है,
या इस अनुभवी प्राणशक्ति का एक प्रेरणात्मक सन्धान समझता है,
या फिर एक विराट् अज्ञ मानस की भीमाकारी कृति मानता है।
किन्तु प्रज्ञा जाग्रत् होती है और अन्तर्दृष्टि अन्तर में विकसित होती है;
तब विश्व-प्रकृति का यह यन्त्र स्वयं को उसका अधिपति बना लेता है;
वह अपनी साक्षी आत्म-सत्ता और चित्-शक्ति की अनुभूति पाता है;
उसकी अन्तरात्मा पीछे हट कर उस परात्पर परमा ज्योति का दर्शन करती है।
इस पाशविक यन्त्र के पीछे एक देवत्व अधिष्ठित रहता है।

सावित्री, पृ. २०-२१

शारीरिक आभास ही सब कुछ नहीं है

हमारा यह शारीरिक आभास ही सब कुछ नहीं है;
यह रूप छलता है, यह व्यक्तित्व एक मुखौटा है;
मानव के अन्तर में गुह्य स्वर्गिक शक्तियाँ गोपनीयता में रह सकती हैं।
उसका भंगुर जहाज़ वर्षों के सागर के मध्य से
परम अविनाशी को गोपनीयता से वहन कर ले जाता है।
उसमें एक आत्मा, परमेश्वर की एक शिखा वास करती है,
जो उस चरम-आद्भुत्य का एक तेजोमय अंश है,
वह अपने आत्म-सौन्दर्य और सुखानन्द का रचनाकार है,
यही हमारी मर्त्य दरिद्रता में अमरत्व है।
अनन्त के आकारों का यह शिल्पी,
पट के पीछे छिपा, अज्ञात यह दिव्य-वासी,
अपने अवगुण्ठित रहस्यों का आत्म-प्रणेता,
अपने विश्व-विचार को एक लघु मूक बीजमन्त्र में छिपा रखता है।

उस गुह्य परम-भाव की मौन शक्ति में
पूर्वनियत आकार और कर्म निर्धारित हैं,
वह जीवन से जीवन का यात्री, स्तर पर स्तर पार करता,
अपने आभासित व्यक्तित्व को प्रत्येक देह में बदलता रहता है,
अपनी दृष्टि के नीचे वह प्रभु-छवि को बढ़ते लखता है
और कीट में आने वाले देव का पूर्वाभास करता है।
अन्त में महाकाल की राहों का यह पथिक
चिरन्तन की सीमाओं पर जा पहुँचता है।
मानवता के इस क्षणभंगुर प्रतीक में लिपटा,
वह अपने अमर चैत्य व्यक्तित्व के सारतत्त्व का अनुभव पाता है
और मर्त्यता के साथ अपना अन्तर सम्बन्ध खो देता है।

सावित्री, पृ. २३

दीर्घ धूमिल तैयारी

मानव का जीवन एक दीर्घ धूमिल मन्द तैयारी है,
कठिन श्रम और आशा एवं युद्ध और शान्ति का घूमता क्रम है
जिसे महाप्राण पुरुष जड़तत्त्व की अँधेरी भूमि पर आँकता है
उन शिखरों पर चढ़ने को जहाँ पहले कोई पदचाप नहीं पड़ी है,
वह नभ में दागी गयी एक ज्वाला के प्रकाश में खोजता है
एक अर्धज्ञात गोपित यथार्थ को, जो सदैव उसकी पकड़ से फिसल जाता है,
किसी सत् की खोज है जो कभी नहीं मिल पाया है,
एक आदर्श का पन्थ है जो यहाँ कभी सत्य नहीं हो पाया है,
उत्थान और पतन का एक अनन्त चक्र है
जो सतत गतिशील है जब तक अन्त में इसे विराट् बिन्दु प्राप्त नहीं हो जाता
जिसके माध्यम से उसकी दिव्य महिमा प्रकाशमान है जिसके लिए हम बने हैं
और तब हम प्रभु की चिरन्तनता में बन्धन तोड़ प्रवेश कर जाते हैं।
अपने स्वभाव की सीमा-रेखा पार कर मुक्त हो जाते हैं
परा-प्रकृति की जीवन्त ज्योति के घेरे में प्रवेश कर जाते हैं।

सावित्री, पृ. २४

चुना हुआ मानव-पात्र

परमात्म-चेतना को विकसित करने के प्रयास में
कभी-कभी वह अव्यक्त लीलाधारी परमेश्वर
चुन लेता है एक मानव-पात्र अवतरण के लिए।
तब दिव्य परिवेश की एक प्राण-वायु नीचे उतर आती है
एक उपस्थिति जन्म लेती है, एक पथप्रदर्शिका आत्म-ज्योति जल उठती है,

पात्र के अवयवों पर एक नीरव शान्ति छा जाती है :
दृढ़ता से जमी, एक संगेमरमरी स्मारक-सम अचल बन जाती है,
पाषाणीय स्थिरता प्राप्त कर यह देह बन जाती है
एक पीठिका, जिस पर दिव्य शान्ति की प्रतिमा स्थापित होती है।
या एक सर्वद्रष्टा प्रज्वलित दिव्य ऊर्जा अन्तर में प्रवेश कर जाती है;
किसी विशाल श्रेष्ठतर महाद्वीप से बाहर निकल प्रज्ञा
बाधाओं को पार करती अपने पीछे ज्योति-सागरों को समेटती आ जाती है,
और सम्पूर्ण प्रकृति शक्ति के दबाव से, अग्नि के तेज से, काँप उठती है।
एक महत्तर आत्म-व्यक्तित्व कभी-कभी हमको
अधिकृत कर लेता है जो हमारा अपना ही होता है :
या हम अपनी आत्मा के आराध्य देव को पूजते हैं।
तब इस शरीर का लघु अहम् क्षीण हो मिट जाता है;
यह पृथक् व्यक्तित्व का आग्रह तज देता है,
अपनी पृथक् उत्पत्ति की औपचारिकता खो देता है,
यह हमें समस्त प्रकृति और प्रभु के साथ एक होने को छोड़ जाता है।
उन घड़ियों में जब अन्तर के प्रकाश-दीप जल उठते हैं
और इस जीवन के प्राणप्रिय अतिथि बाहर छूट जाते हैं,
हमारी चैत्य-सत्ता एकाकी बैठ निज गर्तों से सम्पर्क करती है।
एक बृहत्तर चेतना इसके द्वारों को खोल देती है;
आध्यात्मिक प्रशान्तताओं से धावा बोलती आ जाती है
चिरन्तन प्रभु-तेजस्विता की एक किरण कुछ देर को नीचे झुक आती है,
हमारी इस अधिकृत आलोकित माटी से संलाप करने
और हमारे जीवनों पर निज विशाल शुभ्र छाप छोड़ जाती है।

सावित्री, पृ. ४७-४८

मानव, अभी भी बालक है

हमारा क्षेत्र बहिर्मुखी औ' तात्कालिकता का है,
और मृत भूतकाल हमारी पृष्ठभूमि तथा आधार है;
मन अन्तरात्मा को बन्दी बना रखता है, हम अपने कर्मों के दास हैं;
प्रज्ञा के सूर्य तक पहुँचने को हम अपनी दृष्टि को मुक्त नहीं कर पाते हैं।
क्षणिक पाशविक मन का उत्तराधिकारी,
मानव, विश्व-प्रकृति के सामर्थ्यशाली हाथों में अभी भी एक बालक है,
वह क्षणों के अनुक्रमण में जीता है;
एक प्रतिपल बदलते वर्तमान पर ही उसका संकीर्ण सीमित अधिकार है;
अपनी स्मृति में वह पीछे मुड़ कर अतीत की एक प्रेतछाया को घूरता है,
ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ता है भविष्य उसके सामने से उड़ता जाता है;

वह कल्पित वस्त्रों को ही देख पाता है, वस्त्रधारी का मुख नहीं देखता।
एक सीमित अस्थिर सामर्थ्य से सुसज्जित हो,
वह विरोधी दुर्भाग्य से कर्म के अपने फलों की रक्षा कर लेता है।
उसकी प्रज्ञा की साथिन एक संघर्ष-रत अविद्या है :
अपने कर्मों का परिणाम देखने की वह प्रतीक्षा करता है,
अपने विचारों की सत्यता को परखने की वह प्रतीक्षा करता है,
किन्तु क्या पायेगा या कब प्राप्त करेगा वह नहीं जानता;
अन्त तक वह जीवित रह पायेगा या नहीं, वह नहीं जानता,
या अन्त में प्राक्-ऐतिहासिक विशाल जन्तुओं-समान नष्ट हो जायेगा
और इस पृथ्वी पर, जहाँ का वह राजा था, लुप्त हो जायेगा।
वह अपने जीवन की यथार्थता के विषय में अनजान है,
वह अपनी उन्नत और गौरवपूर्ण नियति के विषय में अनजान है।

सावित्री, पृ. ५३

प्रभु विकसित होंगे

ऐसे ही एक दिन वे अवगुण्ठित प्रभु अपने सिंहासन पर आरूढ़ हो जायेंगे।
जब अन्धकार गहरा होता है इस धरती के वक्ष में श्वास घुटने लगता है
और मानव के साथ केवल संसारी मन का ही प्रकाश होता है,
तब उस घोर निशा में चोर-समान इसके दबे पाँव की आहट होती है,
उस एकम् की जो अपने ही गेह में अगोचर रहता है।
अब तक अश्रुत मन्द सत्यगिरा तब बोलेगी, यह आत्मा आज्ञापालन करेगी,
मन के अन्तर-कक्ष में एक आत्मबल चुपके से जाग जायेगा,
जीवन के बन्द द्वार एक शोभा और माधुर्य की ओर उद्घाटित हो उठेंगे
और इस प्रतिरोधी संसार पर सुन्दरता शासन करेगी,
इस समस्त प्रकृति को हठात् परम सत्य की ज्योति अधिकृत कर चौंका देगी,
तब चितचोर की यह चोरी हृदय को भावविभोर कर बाँध लेती है
और यह जड़-धरा सहसा दिव्यता की ओर विकसित हो उठती है।
इस जड़तत्त्व में आत्मा की आभा प्रकाशमान् हो जायेगी,
काया से काया प्रज्वलित हो इस जन्म को पावन बना देगी;
सितारों के मंगलगान से यह अन्धरात्रि जाग उठेगी,
ये दिवस तब एक सुखी-प्रसन्न तीर्थ-यात्रा बन जायेंगे,
हमारे संकल्प शाश्वत प्रभु के बल की एक ऊर्जा हो जायेंगे,
और ये विचार एक आध्यात्मिक सूर्य की किरण होंगे।
पर इस चैत्य जन्म को विरले ही देख पायेंगे क्योंकि इसे कोई समझा नहीं है;
अन्तर में प्रभु विकसित हो रहे होंगे जब कि विज्ञजन विवाद और नींद में डूबे होंगे;
और क्योंकि मानव इनके आगमन का मुहूर्त जान नहीं पायेगा

जब तक यह कार्य सम्पन्न नहीं हो जाता उसे विश्वास नहीं होगा।

सावित्री, पृ. ५५

मानवजाति का अधिकांश अचेतन है (जिसे मैं अचेतन कहती हूँ, यानी, 'चेतना' से जिनका सम्पर्क नहीं है, जिनका **सचेतन रूप से** 'परम चेतना' के साथ सम्पर्क नहीं है), अधिकांश व्यक्ति; लेकिन, इन परिस्थितियों के परे, जिसके अन्दर वस्तुओं के क्यों और कैसे का अन्तर्दर्शन होता है... वह भव्य है।

तो बात यही है। *सावित्री* में श्रीअरविन्द ने यही लिखा है : प्रभु धरा पर विकसित होते हैं—प्रभु विकसित होते हैं—लेकिन मनुष्य... *(हँसी)*, बुद्धिमान् बातें करते और सोते हैं... और जब तक कार्य पूरा नहीं हो जायेगा कोई इस पर ध्यान ही नहीं देगा। तो ऐसी बात है। और उन्हें इसका पता था।

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से *३ मई १९६९*

वरद हस्त

एक मृत घूमते ब्रह्माण्ड में जीवित
हम यहाँ ऐसे ही एक आकस्मिक भूमण्डल पर नहीं घूम रहे हैं
जैसे अपनी शक्ति से परे का एक कार्य सौंप हमें छोड़ दिया गया हो;
तथापि इस जटिल अराजकता में जिसे दैवी भाग्य कह पुकारते हैं
और मृत्यु तथा पतन की इस कटुता के मध्य
हम अपने जीवनों पर एक वरद हस्त की सुरक्षा का अनुभव पाते हैं।
यह असंख्य देहों औ' जन्मों में हमारे साथ होता है;
अपनी दृढ़ पकड़ में यह हमारे लिए सुरक्षित रखता है
उस अद्वितीय अनिवार्य परम परिणाम-फल को
जिसे कोई संकल्प चुरा नहीं सकता औ' कोई सर्वनाश बदल नहीं सकता,
सचेत चैतन्य अमरतत्त्व का यही राजमुकुट है,
हमारी संघर्षरत अन्तरात्माओं को देवता द्वारा दिया यही वचन था
जब प्रथम मनुज-हृदय ने मृत्यु का सामना कर जीवन में दुःख झेला था।
जिस परमैकम् ने इस संसार को आकार दिया वही इसका स्वामी है:
हमारे दोष उसके मार्ग पर चलते हुए उसी के क़दम हैं;
हमारे जीवनों के विषम उतार-चढ़ावों द्वारा वही कार्य करता है,
संग्राम और कठोर श्रम के बोझिल श्वास में वही कार्य करता है,
हमारे पापों, दुःखों और अश्रुओं के माध्यम से भी वह कार्य करता है,
प्रभु का ज्ञान हमारी निश्चेतना को अधिकृत कर मिटा देता है;
हमारा रूप-रंग चाहे कैसा भी क्यों न हो,
हमारे वर्तमान दुर्भाग्य और दोष कितने भी क्यों न हों,
जब हमें कुछ भी सहारा न दीखे और नाव मँझधार में हो,

इस सबके मध्य हमें एक शक्तिशाली पथ-प्रदर्शक लिये चलता है।
जब हम इस महान् खण्ड-खण्ड में बँटे संसार की सेवा से निवृत्त हो जाते हैं
तब प्रभु के आनन्द और एकत्व पर हमारा सहज अधिकार होता है।
परम अज्ञेय प्रभु के पंचांग में एक तिथि निश्चित है,
दिव्य-जन्म की एक पावन-जयन्ती निश्चित है :
तभी हमारा आत्म-पुरुष अपनी चतुरंगी चाल का औचित्य सिद्ध कर पायेगा,
अभी तक जो नहीं है अथवा सुदूर है तब सब समीप आ जायेगा।

सावित्री, पृ. ५९

दो जो एक हैं

वह परम स्रष्टा है और स्वयं अपने द्वारा रचित संसार भी वह है
वह आत्म-दर्शन है और वह आत्म-द्रष्टा भी है;
वह स्वयं अपना अभिनेता है और यह दृश्य भी वह स्वयं है
वह स्वयं आत्म-ज्ञाता है और ज्ञान भी है,
वह स्वयं स्वप्न-द्रष्टा है और स्वप्न भी है।
वे दो दिव्यताएँ हैं पर वे एकम् हैं जो अनेक लोकों में लीला करते हैं;
विद्या और अविद्या में वे बोलते और मिलते हैं
और ज्योति और अन्धकार उनके नयनों का आदान-प्रदान है।
हमारे सुख और दुःख उनका आलिंगन औ' संघर्ष हैं,
हमारे कर्म औ' हमारी आशाओं के साथ उनकी कहानी आबद्ध है;
हमारे विचार और जीवन में वे गुप्त रूप से गठबन्धित हैं।
यह विश्व उनकी एक अनन्त लीला की रंगभूमि है :
क्योंकि यहाँ जो दिखता है वह पूरी तरह वैसा नहीं होता है;
यह एक सत्य का एक स्वप्न-तथ्य दर्शन है
पर यदि इस स्वप्न का अस्तित्व न होता तो यह पूर्ण सत्य नहीं बन पाता,
शाश्वतता की धूमिल पृष्ठभूमि के सम्मुख
यह एक दृश्य-प्रपञ्च भी महत्त्वपूर्ण दीखता है;
हम इसके आनन को तो स्वीकारते हैं पर सम्पूर्ण अर्थ को छोड़ देते हैं;
जो एक अंशमात्र दीखता है, हम इसे सम्पूर्ण समझ लेते हैं।
इस प्रकार उन्होंने अपना नाटक रचा है हमें पात्र बना कर :
स्वयं लेखक और अभिनेता वे स्वयं को दृश्य-समान बना कर,
आत्मपुरुष-रूप में गतिशील हैं, शक्ति-रूप वे प्रकृति देवी हैं।

सावित्री, पृ. ६१

उनका मानवीय अंश

उस निरपेक्ष ने, उस पूर्ण तत्त्व ने, उस परमैकम् ने
अपनी मूक पराशक्ति का चिर-नीरवता से बाहर आवाहन किया था
जहाँ वह अरूपायित और आकारहीन निस्तब्धता में सोयी थी,
अपनी अचल निद्रा के द्वारा वह महाकाल से रक्षा कर रही थी
उसके एकान्त की अनिर्वचनीय तपस्या की।
वह निरपेक्ष, वह पूर्ण तत्त्व, वह परमैकम्
निज नीरवता के साथ दिशाओं में प्रवेश कर गया :
उसने एक सत्ता से इन असंख्य व्यक्तियों को रच डाला है;
उसने अपनी आत्म-शक्ति की लाखों आकारों में सृष्टि कर डाली है;
अब वह समस्त में बसता है, जो अपने एकाकी महाकाश में बसता था;
वह स्वयं ही भुवनाकाश है और महाकाल भी केवल वह है।
वह निरपेक्ष, वह पूर्णतत्त्व, वह अविकारी प्रभु,
वह परमैकम् है जो हमारे अन्दर हमारी गुह्य सत्ता है,
उसने हमारी अपूर्णता के छद्मवेष को धारण किया है,
उसने इस मांसल देह को अपना निजी गेह बनाया है,
अपने प्रतिबिम्ब को मानवीय साँचे में ढाल दिया है,
जिससे उसके दिव्य माप में हम उन्नत हो सकें;
तब विश्वकर्मा हमें फिर से एक दिव्यता के आकार में
ढाल देगा, और आरोपित कर देगा देवत्व की
एक योजना इस नश्वर मानव-काया पर,
इस तरह हमारे नश्वर मनों को अपनी अमरता की ओर उठा कर,
इस क्षण को शाश्वतता का संस्पर्श दे देगा।
यह रूपान्तर पृथ्वी को स्वर्ग से मिलने वाला एक पावना है :
एक आपसी ऋण ने मानव को पुरुषोत्तम से बाँध दिया है :
हमें उसकी प्रकृति अपनानी है जैसे उसने हमारी धारणा की है;
हम उसके बालक हैं और हमें उसके समान बनना है :
उसके मानवीय अंश, हमें दिव्य बन कर विकसित होना है।
हमारा जीवन एक विरोधाभास है, जिसकी कुञ्जी परमेश्वर है।

सावित्री, पृ. ६७

"ओह, निश्चय ही उसे हमारी पुकार सुन एक दिन आना होगा,
एक दिन हमारे जीवनों का वह नव-निर्माण करेगा
और शान्ति का चमत्कारी महामन्त्र उच्चारण करेगा
और पदार्थों की योजना में परिपूर्णता ले आयेगा।
एक दिन वह जीवन और धरती पर अवश्य उतरेगा,
शाश्वत द्वारों के पीछे की छिपी गोपनीयता को त्याग
सहायता-हित इस सतत पुकारती पृथ्वी पर वह उतर आयेगा,
और उस आत्म-मुक्तिदाता सत्य को साथ लायेगा,
एवं उस आनन्द को जो आत्मा का विशुद्ध-भाव है,
भागवत प्रेम के प्रशस्त वरद हस्त की शक्ति ले आयेगा।
एक दिन वह निज सौन्दर्य पर से भीषण अवगुण्ठन उठा लेगा,
और जगत् के धड़कते हृदय पर आनन्द-सुख को आरोपित कर,
ज्योति तथा सुखानन्द की निज गुह्य देह प्रकट कर देगा।"

सावित्री, पृ. २००

माँ की लीला यथार्थ है

यहाँ एक सत्य का उद्‌घाटन करना है, एक कार्य सम्पादित करना है;
माँ की लीला यथार्थ है; पुरुष एक पूर्ण रहस्य की आपूर्ति करता है :
माँ की इस जग-लीला की गहनता में एक योजना है,
इस विराट् निरुद्देश्य दिखते खेल में एक सार्थकता है।
जीवन के प्रथम उषा-काल से अब तक सतत उसकी यही सार्थक योजना रही है
इस स्थिर संकल्प को उसने अपनी लीला के पीछे आवृत रखा है,
जिससे इस निर्वैयक्तिक शून्य ब्रह्म में एक दिव्य व्यक्ति-चेतना प्रकट हो सके,
परमा सत्य ज्योति से पार्थिव जड़ता की समाधिस्थ घोर जड़ों को काट सके,
इस अचेतन की अज्ञ गहनताओं में एक मूक चैत्य पुरुष को जगा सके
और एक लुप्त दैवी बल को इसकी कुम्भकर्णी निद्रा से उठा सके
जिससे कालातीत प्रभु के नेत्र इस कालभूमि से बाहर देख सकें
और इस भूतल पर आवरणहीन दिव्यता अभिव्यक्त हो जाये।

सावित्री, पृ. ७२-७३

पुरुषोत्तम के विरोधी

पुरुषोत्तम का विरोध करने वे आये हैं,
अपने आत्म-चेतनाहीन विचार और शक्ति के संसार से निकल वे
द्वेष-भावना द्वारा वैश्विक योजना-पूर्ति में सहायक बनते हैं
यह तमस् अन्धरात्रि उनका विश्रामगृह और सामरिक महत्त्व का आधार क्षेत्र है।
आलोक-ज्वाला की कटार के विरोध में, दीप्तिमान दिव्य नेत्र के विरुद्ध वे
उदास नैराश्य के अति विशाल दुर्गों में,
सूर्य-प्रकाशहीन एकान्त में वे शान्त सुरक्षित रहते हैं :
देवलोक की कोई भटकती किरण वहाँ प्रवेश नहीं कर सकती है।
कवच से लैस वे अपने विषैले मुखौटों द्वारा सुरक्षित बने रहते हैं,
मानों मृत्यु-देवी के किसी रचनात्मक कलाकक्ष में बैठे
घोर अन्धकार के ये दानवी पुत्र योजना बनाते हैं
इस पृथ्वी के नाटक की और अपने त्रासदायी दुःखान्त रंगमञ्च की।
उन सबको जिन्हें इस पतित संसार का उत्थान करना है
उन्हें इनके घोर बल के ख़तरनाक तोरणों के नीचे से गुज़रना पड़ता है,
क्योंकि देवों की तेजस्वी सन्तानों तक को भी कलंकित कर
कलुषित बना देने की सुविधा और भीषण विशेषाधिकार इन्हें प्राप्त है।
कोई भी नरक में प्रवेश किये बिना स्वर्ग तक नहीं पहुँच सकता है।

सावित्री, पृ. २२६-२७

घोर नरक की राजधानी

एक मिथ्या वहाँ सत्य था और सत्य एक असत्य था।
ऊर्ध्वगामी यात्री को इसी मार्ग से हो गुज़रना पड़ता है
क्योंकि घोर नरक की राजधानियों की चुनौती स्वीकार कर वह स्वर्ग-पथ पर बढ़ता है—
उस ख़तरनाक दिशा के मध्य विराम लेते या धीरे से निकलते हुए
उसके होठों पर एक प्रार्थना और प्रभु के नाम का जाप था।
यदि सम्पूर्ण विवेक-बोध की तीव्र नोक से वह भली-भाँति परीक्षण न करता
तो मिथ्यात्व के अनन्त पाश में ठोकर खा गिर सकता था।
उसे अक्सर निज कन्धों के ऊपर पीछे देखना पड़ता
उस व्यक्ति-सम जो निज ग्रीवा पर एक शत्रु का श्वास अनुभव करता है;
अन्यथा पीछे चुपके से एक राजद्रोही आघात का प्रहार
उसे धराशायी कर उस अपवित्र धरती से जकड़ सकता था,
महापाप का तीक्ष्ण अग्निदण्ड उसकी पीठ में बिंध सकता था।
इस प्रकार चिरन्तन के पथ पर किसी का भी पतन
युगान्तरों में प्राप्त अपनी आत्मा का एकाकी अवसर खो सकता है
और प्रतीक्षारत देवताओं के पास उसका कोई समाचार तक नहीं पहुँचता
आत्माओं की पंजिका में वह "गुमशुदा" अंकित हो जाता है,
उसका नाम एक असफल आशा की तालिका में आ जाता है,
यह एक मृत तारे की स्मृति का स्थान है।
केवल वे ही सुरक्षित रहते हैं जो प्रभु का नाम निज हृदय में रमा रखते हैं :
साहस उनका कवच, श्रद्धा तलवार है, उन्हें सतत चलते रहना है,
उनके हाथ प्रहार को तत्पर, नेत्र सतर्क पहरा देते,
जो लक्ष्य पर दृष्टि को एक भाले-सम सामने फेंकते,
वे परा-प्रकाश की सेना के महावीर हैं और योद्धा हैं।

सावित्री, पृ. २१०-२११

"कोई भी नरक में प्रवेश किये बिना स्वर्ग तक नहीं पहुँच सकता है।" (सावित्री से)

लेकिन फिर भी माँ, भगवान् के द्वारा चुनी हुई आत्मा क्या दूसरों से भिन्न नरक से नहीं गुज़रती?

इस उद्धरण का अर्थ है कि धरती पर रहते हुए भागवत क्षेत्रों तक पहुँचने के लिए मनुष्य को प्राण-लोक से गुज़रना पड़ता है, जहाँ कई हिस्से सचमुच नरक होते हैं। लेकिन जिन्होंने स्वयं को भगवान् को समर्पित कर दिया है और जिन्हें उन्होंने आलिंगित कर लिया है वे भागवत सुरक्षा से घिरे रहते हैं और उनके लिए वह मार्ग कठिन नहीं रहता।
एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से

'प्रभु' का छायादार घूँघट

उसने घनघोर रात्रि में चिरन्तन प्रभु का छायादार घूँघट देखा,
जीवन-भवन का एक तहख़ाना मृत्यु है, वह जान गया,
विनाश में सृष्टि की उग्रवेगी शीघ्रता का इसने अनुभव पाया,
एक स्वर्गिक लाभ-प्राप्ति का दाम हानि से चुकाया जाता है
और नरक को स्वर्ग की ओर जाता एक संक्षिप्त मार्ग-सम जाना।
तब मोहमाया के गुह्य कारख़ाने में
और महा अचित् के जादुई छापेख़ाने में
उस आद्या घोर रात्रि की पुस्तकों के बाहरी ढाँचे फाड़ दिये गये थे
और अविद्या की रूढ़ि धारणाओं को छिन्न-भिन्न कर दिया था।
प्राणशक्ति वहाँ एक गहरी आध्यात्मिक श्वास लेती,
संजीवनी, प्राण-प्रकृति ने अपनी कठोर नियमावली मिटा दी
और उस बन्दी आत्मपुरुष को अनुबन्धित अनुच्छेदों से मुक्त कर दिया,
वहाँ मिथ्यात्व ने अनादि सत्य को अपना पीड़ित रूप लौटा दिया था।
प्राण-पीड़ा के विधान के सभी पहाड़े रद्द कर मिटा दिये गये,
और उनके स्थान पर दीप्तिमान अक्षर उभर आये थे।
चतुर शिल्पी देव-लिपिक की अदृश्य अँगुलि ने
योगी के तात्कालिक अन्तर्दर्शन को सुलेख में लिख सजा दिया;
पृथ्वी के सब आकार अब उसके दिव्य प्रमाण-पत्र बना दिये गये,
उस प्रज्ञा को प्रकट कर दिया जिसे मन अभिव्यक्त नहीं कर पाया था
जगत् के वाणीहीन वक्षस्थल से घोर अचित् को निकाल बाहर किया;
विवेचना के आदि-विचार की अटल योजनाओं का रूपान्तर हो गया।
निर्जीव पदार्थों में चेतना जाग्रत् कर,
उसने काले परमाणु और मूक स्थूल द्रव्य पर
अविनाशी प्रभु की ज्योतिर्मयी हीरक लिपि आरोपित कर दी,
पतित वस्तुओं के मूढ़ अन्तर पर अंकित कर दिया
मुक्त नित्यता के एक स्तुति-गायन को
और उस प्रभु-नाम को, जो चिरन्तनता का मूलाधार है,
और जाग्रत् आह्लादित कोषाणुओं पर उकेर दिया
अनिर्वचनीय की भावना से पूर्ण लिपियों में
उन प्रेम के गीतों को जो युगों से प्रतीक्षा में मूक थे,
और आत्मरति के शास्त्र के गुह्य आदि-ग्रन्थ को,
और परा-चैत्याग्नि के मूल सन्देश को अंकित कर दिया।

सावित्री, पृ. २३१-३२

वह आत्म-सिद्ध और परात्पर है

किन्तु शाश्वत दिव्य सत्य को विचार या शब्द नहीं पकड़ सकते हैं :
यह सम्पूर्ण जगत् उस देवी के सूर्य की एक अकेली किरण से श्वासित है।
हमारे विचार-दीप से प्रकाशित बुद्धि के बन्द और संकुचित कक्ष में
हमारे क़ैदी मर्त्य-मानस का मिथ्या अहंकार स्वप्न देखता है
कि विचारों की शृंखला से बाँध उसे हमने अपना बना लिया है;
किन्तु हम केवल अपने निजी प्रतिभाशाली बन्धनों से खेलते हैं;
उसे बाँधने के प्रयास में हम स्वयं को बाँध लेते हैं।
एक दीप्तिपूर्ण ज्योति-बिन्दु के सम्मोहन में बँधे
हमने सत्यदेवी का कितना लघु-अंश धर पाया है, यह हम नहीं देख पाते;
हम उसकी प्रेरक असीमता का अनुभव नहीं कर पाते,
हम उसकी अमर मुक्ति के भागीदार नहीं बन पाते हैं।
यहाँ तक कि ऋषि और द्रष्टा के साथ भी यही घटित होता है;
क्योंकि उनकी मानसिक सीमाएँ भी परम दिव्य को सीमित कर देती हैं :
अपने विचारों के बाहर हमें दर्शन की ओर छलाँग लगानी है,
उसके दिव्य असीम वातावरण में श्वास लेना है,
उसकी सहज विशाल सर्वोच्चता को हमें स्वीकारना होगा,
उसके प्रभुत्व के प्रति सर्वस्व समर्पण का साहस करना होगा।
तब वह अव्यक्त प्रभु निज आकार के आभास को
एक सजीव दर्पण-सम इस स्थिर मन की सतह पर प्रतिबिम्बित कर देगा;
जब यह कालातीत दिव्य-किरण हमारे अन्तरों में अवतरित होती है
और हम शाश्वतता की तन्मयता में डूब जाते हैं।
क्योंकि यह सत्य की देवी अपनी सब अभिव्यक्तियों की अपेक्षा अधिक विशाल है।
उसके भक्तों ने उसके सहस्र रूप रच डाले हैं
और अपनी अभीष्ट प्रतिमाओं में उसे पाया है;
किन्तु वह तब भी आत्म-सिद्ध और चिरन्तन परात्पर है।

सावित्री, पृ. २७६

अमर दिव्य गुलाब

मध्य में, हमारे प्राण के पीछे, यह अमर दिव्य गुलाब है।
इस सीमित प्रच्छन्न वातावरण के उस पार अन्तरात्मा मुक्त श्वास लेती है,
विश्व-सौन्दर्य और हर्षपूर्ण आनन्द की एक काया वहाँ स्थित है
यह इस अन्धे भोगी संसार के अनुमान से परे अगोचर बसती है,
प्रकृति देवी के गहन समर्पित हृदय से आरोहण कर
यह परमेश के चरणों में सतत प्रमुदित खिली रहती है,
जीवन के यज्ञ में समर्पित गुह्यताओं द्वारा यह पोषण पाती है।

यहाँ पार्थिवता में भी इसकी कलिका मानव-हृदयों में प्रस्फुटित होती है;
तब एक स्पर्श, एक सान्निध्य या एक वाचा द्वारा
यह संसार एक मन्दिर की वाटिका में परिणत हो जाता है
और अखिल जगत् उस अज्ञेय प्रियतम की अभिव्यक्ति बन जाता है।
स्वर्गिक हर्ष और सहज सरलता के एक विस्फोटन में
हमारा जीवन अन्तर्वासी दिव्यता पर न्योछावर हो जाता है
और अपना सर्वस्व भाव-समाधि के आनन्द में समर्पित कर देता है,
और यह जीव परमानन्द की ओर उद्घाटित हो उठता है।
एक ऐसे स्वर्गिक हर्ष की अनुभूति पाता है जो कभी पूर्णतः समाप्त नहीं होता है,
गुप्त दिव्य कृपा का एक रहस्य हठात् पुष्पित हो
हमारी भौतिक रक्तवर्णी कामना की धरती को स्वर्णमयी बना देता है।
वे समस्त उन्नत देवता जो अपने मुखों को
हमारी आशाओं के दूषित रागमय अनुष्ठानों में छिपा लेते हैं,
वे अपने नामों और अपनी अमर शक्तियों को अब प्रकट कर देते हैं।
उन सुप्त कोषाणुओं में एक ज्वलन्त स्थिर नीरवता जाग जाती है,
मांसल देह का आवेश चित्-शक्ति बन जाता है,
अन्त में वह चमत्कार जिसके लिए
यह हमारा जीवन बना है अद्भुत ढंग से परिपूर्ण हो जाता है।

सावित्री, पृ. २७८

विश्व-पुरुष

सकल संसार की मौन विश्वात्मा वहाँ उपस्थित थी :
एक परम-सत्ता, एक परम उपस्थिति और एक चित्शक्ति थी,
एक अद्वितीय विश्व-पुरुष जो आत्मरूप था और सर्वात्मरूप था
और विश्व प्रकृति की मधुर और अनिष्टकारी धड़कनों को हृदय में सँजोता
और उन्हें दिव्य और शुचि-पावन स्पन्दनों में बदल देता।
परमैकम् जो प्रेम करता पर प्रेम का प्रतिदान नहीं माँगता,
यह उत्तम और अधम की ओर समभाव से मुड़ता एवं भेंटता,
यह पार्थिव जीवन की कटु क्रूरताओं के घावों को भर देता,
सकल अनुभव को आनन्द में रूपान्तरित कर देता;
जन्म के दुःखदायी मार्गों पर हस्तक्षेप कर
सृष्टि के दिव्य शिशु के पालने को झुलाता
और अपने सुखदायी कर द्वारा समस्त रोदन शान्त कर देता;
अनिष्टकर वस्तुओं को यह उनकी गुप्त शुभता की ओर मोड़ देता,
शोषणकारी मिथ्यात्व को प्रसादकारी सत्य में बदल देता;
गुह्य दिव्यता प्रकट करने की शक्ति इसी की थी।

यह प्रभु के मन के साथ सम-सामयिक, नित्य था,
यह निज अन्तर में एक बीज, एक ज्वाला वहन करता,
एक बीज जिससे शाश्वत नव-जन्म ले जन्मता है,
एक ऐसी ज्वाला जो नश्वर वस्तुओं में मृत्यु रद्द कर देती है।

सावित्री, पृ. २९१

स्वर्ण-सेतु

शुभ्र श्वेत आत्मिक स्रोतों से उदित एक ज्वलन्त दिव्य प्रेम ने
तमस् की अज्ञ गहनताओं के कष्टों को मिटा दिया;
भगवती के अमर स्मित में समस्त क्लेश समाप्त हो गया।
परात्परता के एक महाप्राण ने यहाँ धरा पर मृत्यु को जीत लिया;
भूल या दोष करना अब मन का सहज स्वभाव नहीं रहा;
जहाँ पूर्ण प्रकाश और सब प्रेममय था वहाँ पाप का प्रवेश नहीं हो सकता था।
माता के अन्तर में निराकारी ब्रह्म और साकार पुरुषोत्तम एकत्व में जुड़े थे :
एक चितवन ने विराट् की सीमा को पार कर अवलोका,
एक श्री-आनन ने प्रकट हो उस परिपूर्ण चिरन्तनता को दिखा दिया।
माता के अंगों से अनिर्वचनीय असीम आह्लाद-सुख झर-झर बहता
वह अनन्त सुख जिसे अन्धी संसारी-शक्तियाँ खोजती हैं,
उसके सौन्दर्य की काया में आनन्द के सिन्धु शशि-सम प्रतिबिम्बित थे।
वह यहाँ के जन्म और कठोर श्रम तथा नियति के ऊपर आसीन है,
ये युग अपने मन्द गतिचक्रों में उसी की पुकार पर घूमते हैं;
केवल उसी के हाथ हैं जो त्रिकाल के शेषनाग की धुरी बदल सकते हैं।
उसी के रहस्य को यह अज्ञान की अन्धरात्रि छिपाये रहती है;
हमारी आत्मचेतना की कीमियागर ऊर्जा भी उसी की है;
वह स्वर्ण-सेतु है, अलौकिक दिव्याग्नि है।
परम-अज्ञेय का दीप्तिमान हृदय भी वह है,
प्रभु की अथाह गहनताओं में नीरवता की एक शक्ति है;
वह आदि-शक्ति है, सृष्टि हित अनिवार्य आदि शब्दब्रह्म है,
हमारे कठिन दुरूह आरोहण को आकर्षित करती चुम्बक है,
वह अदिति माता है जिससे हमारे आदित्य प्रज्वलित होते हैं,
वह दिव्य ज्योति है जो अगम्य परात्परों से नीचे झुक आती है,
वह आत्म-प्रसन्नता है जो असम्भव उच्चता से संकेत कर बुलाती है,
वह समष्टि की परमा शक्ति है जो अभी तक यहाँ कभी अवतरित नहीं हुई है।...
और मानव की धूमिल आत्मा पर लगे ताले सब टूट जायें
और उसकी ज्वाला वस्तुओं के बन्द अन्तरों में प्रज्वलित हो उठे।

सावित्री, पृ. ३१४

मधुर माँ,

मैंने अभी-अभी सुना कि यद्यपि गुरु के समस्त अवयवों से 'कृपा' बहती है (जैसे आँख, हाथ से) लेकिन चरणों से जो चीज़ प्रवाहित होती है वह सबसे अधिक ऊर्जाशील तथा अनुकम्पा से भरी होती है। कहा जाता है कि इसी कारण भारतीय परम्परा में चरण छूने का रिवाज है। क्या यह सच है?

यह रहा तुम्हारे प्रश्न का श्रीअरविन्द के शब्दों में उत्तर :

... पड़ती जहाँ-जहाँ पद-छाप जगज्जननी की
बहने लगतीं नदियाँ अद्‌भुत
उल्लासभरा आनन्द लिये।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १७, पृ. ५०२

मानवीय बल और मानवीय प्रेम

किन्तु मानवीय बल और मानवीय प्रेम निष्फल रहे
धरती पर लगी इस अन्ध-अज्ञान और मृत्यु की मुहर तोड़ने में,
मानव स्वभाव की सामर्थ्य अब एक शिशु की मुट्ठी-सम लगती है;
जिसके फैले हुए हाथों की पकड़ के लिए स्वर्ग अति उच्च है।
यह पराज्योति संघर्ष से या विचार द्वारा ग्रहण नहीं की जाती है;
इस मानस की नीरव शान्ति में परात्परता कार्य करती है
और हृदय के मौन में अनुच्चारित परम-नाद सुनायी देता है।
केवल एक प्रशस्त समर्पण ही अब उसकी एकमात्र शक्ति थी।
एक परम शक्ति जो उच्चताओं पर बसती है उसे कर्म-क्षेत्र में आना होगा,
जीवन के अवरुद्ध कक्ष में अमर श्वास को लाना होगा
और इस अनित्य नश्वरता को नित्य अमरत्व से भरना होगा।
जो इसका निषेध करेगा उस सबका वध कर, मिटा देना होगा
और उन अनेक वासनाओं को कुचल देना होगा
जिनके कारण हम उस परमैकम् को खो देते हैं जिसके लिए हमने जीवन धारा था।

सावित्री, पृ. ३१५-१६

नूतन सृष्टि

एक परमानन्द, एक परमाज्योति, एक पराशक्ति, दिव्यप्रेम की शुभ्र शिखा ने
सकल को एक अद्वितीय विशाल आलिंगन में बाँध लिया;
अस्तित्व ने अपना सत्य परमैकत्व के वक्ष पर प्राप्त कर लिया
और प्रत्येक व्यष्टिसत्ता अब समष्टि की आत्मा और आकाश बन गयी।
ये महान् जग-सुर-ताल सब एक ही परमात्मा के हृदय की धड़कनें थीं,
यह अनुभूति प्रभु के अनुसन्धान की ज्योतिशिखा थी,
सकल मानस एक ही वीणा के अनेक तार थे,
सकल प्राण अनेक सम्मिलित जीवनों का एक गीत था;
क्योंकि जगत् अनेक थे, किन्तु उनकी आत्मा एक थी।
यह ज्ञान अब एक ब्रह्माण्डीय बीज-मन्त्र बन गया :
इस बीज को पराज्योति के सुरक्षित खोल में रख दिया,
इसे अब अविद्या के आवरण की आवश्यकता नहीं रही।
तब उस घोर आलिंगन की गहन समाधि में से
और उस एकाकी महाप्राण हृदय-स्पन्दनों से
और आवरणहीन शून्य विश्वात्मा की विजय से
एक नूतन और अद्‌भुत सृष्टि उदित हो उठी।
असंख्य नित्यताएँ बहने लगीं
एक अमेय प्रसाद उनके हास्य में प्रवाहित था
वे अपनी अनगिनत एकताओं में निवास करती थीं;

इन लोकों में जहाँ सत्ता मुक्त और विशाल है
अचिन्त्यभाव में यह अहंकारहीन चिदात्मा की काया है;
परमानन्दीय ऊर्जाओं के हर्षोल्लास ने
त्रिकाल को कालातीत से जोड़, एक अद्वितीय हर्ष के ध्रुवों को मिला दिया;
शुभ्र धवल विस्तार दिखायी दिये जहाँ पर सकल सबको लपेटे थे।
वहाँ द्वन्द्वों का विरोध नहीं था, कोई अंश पृथक् नहीं थे।
सब आत्मिक कड़ियों से आपस में सबसे जुड़े थे
और अटूटता से परमैकम् प्रभु से बँधे थे :
प्रत्येक अपने में अद्वितीय था किन्तु सब जीवनों को अपने जैसा मानता,
और, वह परम-नित्य के इन विभिन्न रंगों का अनुसरण कर,
अपनी अन्तरात्मा में सकल विश्व को पहचान गया।

सावित्री, पृ. ३२२-२३

मनुष्य—अर्ध-देव और पशु के बीच की कड़ी

अर्ध-देव और पशु के बीच की वह एक कड़ी है,
वह अपनी आत्म महत्ता और निज ध्येय से अनजान है;
वह कहाँ से आया और क्यों आया यह भूल चुका है।
उसकी आत्मा और सत्ता के अंग परस्पर संघर्षरत हैं;
उसकी पराकाष्ठाएँ आकाश तक पहुँचने से पहले ही बहुत नीचे टूट जाती हैं,
उसकी जड़ स्थूल देह पशु-पंकिलता में दबी हुई है।
उसके स्वभाव में एक विचित्र विरोधी विधान है।
जिसने उसके कार्यक्षेत्र को विरोधी जटिलताओं से भर दिया है :
मुक्ति वह माँगता है पर बन्धनों में रहना उसकी अनिवार्यता है,
कुछ प्रकाश की अनुभूति लेने को उसे अन्धकार की आवश्यकता है,
अल्प आनन्द का सुख भोगने को उसे दुःख की आवश्यकता है;
एक महत्तर जीवन की प्राप्ति-हेतु उसे मृत्यु की आवश्यकता है।
उसकी दृष्टि चहुँ ओर है और प्रत्येक पुकार की ओर मुड़ जाता है;
पर निज मार्ग पर चलने को उसके पास कोई निश्चित प्रकाश नहीं है;
उसका जीवन एक अन्धे का अनुमान, एक आँख-मिचौनी है;
वह स्वयं को खोजता और निज आत्मा से पीछे हट जाता है;
जब निज आत्मा से मिलता है तब उसे अपने से पराया जैसा सोचता है।
वह सतत रचता है, किन्तु एक भी स्थायी भूमि नहीं पाता है,
अविराम यात्रा करता है, किन्तु कहीं भी पहुँच नहीं पाता है;
संसार का पथ-प्रदर्शन करता है, किन्तु स्वयं भटकता रहता है;
अपनी आत्मा को सुरक्षित रखता है, किन्तु निज जीवन को बचा नहीं पाता है।

सावित्री, पृ. ३३७

सभी वस्तुएँ बदलेंगी

मेरी ज्योति तेरे अन्तर में रहेगी, मेरी शक्ति तेरा आत्मबल बनेगी।
निज हृदय को असहिष्णु शैतान द्वारा सञ्चालित न होने दे,
आधे-पके फल का वरदान न माँग, यह तो आंशिक पुरस्कार है।
अपनी आत्मसत्ता को महत्तर करने को, केवल एक वरदान तू माँग ले;
अपनी जाति के उत्थान-हित, केवल एक सुख-हर्ष की कामना कर ले।
अन्धी नियति और इन घोर विरोधी बलों के ऊर्ध्व में
एक महान् अपरिवर्तनीय दिव्य संकल्प अटलता से स्थिर है;
इसकी सर्वशक्तिमत्ता पर तू निज-कर्म का परिणाम छोड़ दे।
परमेश की रूपान्तरकारी घड़ी में सकल वस्तुओं का परिवर्तन अवश्यम्भावी है।"

सावित्री, पृ. ३४१

"जिसका पथ-प्रदर्शन भगवान् करते हैं उसकी असफलता असफलता नहीं होती।"
(सावित्री से)

क्योंकि यह भी क्रीड़ा का अंग है?

मानव मन सफलता और असफलता की धारणाएँ बनाता है। मानव मन एक चीज़ चाहता है और दूसरी नहीं। भागवत योजना में हर चीज़ का अपना स्थान है, अपना महत्त्व है। इसलिए सफलता का महत्त्व नहीं है। महत्त्व है भागवत इच्छा का आज्ञाकारी, और हो सके तो **सचेतन** यन्त्र बनना।

एकमात्र सच्ची महत्त्वपूर्ण बात है वही होना और वही करना जो 'भगवान्' चाहते हैं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. ४३७-३८

"भगवान् के रूपान्तरकारी मुहूर्त में सभी चीज़ें बदल जायेंगी।" (सावित्री से)

क्या मनुष्य इस मुहूर्त के आने में जल्दी या देर कर सकता है?

पृथक्कारी चेतना इनमें जो आभासी विरोध पैदा करती है उनमें से न एक न दूसरी, बल्कि तीसरी ही चीज़ होती है जिसे हमारे शब्द प्रकट नहीं कर पाते।

मानव चेतना की वर्तमान अवस्था में उसके लिए यह सोचना ज़्यादा अच्छा है कि अभीप्सा और मानव प्रयास दिव्य रूपान्तर के जल्दी आने में सहायता कर सकते हैं, क्योंकि रूपान्तर के लिए प्रयास और अभीप्सा की ज़रूरत है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. ४४०

सर्वशक्तिशाली परमेश के प्रज्वलित अग्रगामी

मैंने सर्वशक्तिशाली परमेश के प्रज्वलित अग्रगामियों को
स्वर्ग की उस सीमा पर देखा जो पार्थिव जीवन की ओर मुड़ती है
जन्म के अम्बर-सोपानों पर से वे समूहों में नीचे उतर रहे थे;
दिव्यता के अग्रदूत वे संख्या में अनेक थे,
प्रभात के शुभ्र तारे के पथों से बाहर निकल रहे थे,
मर्त्य-जीवन के इस लघु कक्ष में प्रवेश करने आ रहे थे।
एक युगान्तर के सान्ध्य प्रकाश को मैंने उन्हें पार करते देखा,
एक अद्‌भुत उषा के उन सूर्य-सम चमकते नेत्रोंवाले बाल-वृन्द को,
शान्त-विशाल भाल के उन महान् स्रष्टाओं को,
इस जगत्-संरचना के घोर-स्थूल सीमा-भञ्जकों को
और नियति के साथ उसके संकल्पों से जूझने वाले मल्लयोद्धाओं को
देवों की खदानों में कार्य करने वाले श्रमिकों को,
अनिर्वचनीय प्रभु के सन्देशवाहकों को,
अमरता के दिव्य शिल्पकारों को देखा।
वे इस पतित मानवीय स्तर में उतर आये थे,
फिर भी उनके मुखमण्डल अमर-देवों की शोभा से सुशोभित थे,
फिर भी उनकी वाणियों में प्रभु के विचार गूँज रहे थे,
उनके शरीर आत्म-तेज के सौन्दर्य से आलोकित थे
वे निज अन्तर में मान्त्रिक शब्द, गुह्याग्नि को धारण किये थे
हर्ष के मदमस्त करते पात्र को वहन कर ला रहे थे,
वे समीप आते हुए एक दिव्यतर मानव के नयन थे,
अन्तरात्मा की एक अनजानी ऋचा उच्चारते अधर थे,
महाकाल के प्रांगणों में उनके चरण-चाप गूँजते थे।
वे प्रज्ञा, माधुर्य, सामर्थ्य और आनन्दातिरेक के श्रेष्ठ पण्डित थे,
सूर्यालोकित मार्गों की सुरम्यता के अन्वेषक थे
और दिव्य प्रेम के हँसते आवेगपूर्ण प्रवाहों के तैराक थे
और प्रहर्ष के स्वर्ण-द्वारों के अन्दर नाचते नर्तक थे,
उनका पदक्षेप अवश्य एक दिन इस शोकार्त धरा को रूपान्तरित कर देगा
और विश्व-प्रकृति के आनन की ज्योति का औचित्य सिद्ध कर देगा।
यद्यपि यह दिव्य भाग्य उन्नत परात्परता में विलम्ब करता छिपा है
और यह कार्य, जिस पर हम हृदय की शक्ति गँवा चुके, व्यर्थ ही लगता है,
किन्तु जिसके लिए हमने कष्ट उठाया वह सकल कार्य अवश्य सिद्ध होगा।
ज्यों पशु के पश्चात् आदि मानव धरा पर आया था
वैसे ही मानव की असमर्थ निर्बल नश्वर चाल के पश्चात्
यह उन्नत दिव्य उत्तराधिकारी यहाँ निश्चय ही आयेगा,

उसके निष्फल श्रम, स्वेद और रक्त एवं अश्रुओं के अर्घ्य के बाद अवश्य आयेगा;
जिसे यह मर्त्य मन अति कठिनाई से सोच पाता है वह सबका ज्ञान पा जायेगा।
जिस कार्य को करने का यह मानव हृदय साहस नहीं पाता वह कर दिखायेगा।
मानवीय काल के परिश्रम का वह उत्तराधिकारी होगा
और देवताओं का भार भी वह निज कन्धों पर उठा लेगा;

सावित्री, पृ. ३४३-४४

चिरन्तन की शिल्पी-वधू

निज गुह्य सूर्य में सुरक्षित बसती ओ सत्यमयी दिव्यता,
आवृत स्वर्गों में चिन्तनमग्न, ओ सूर्य की शक्ति-वाचा,
दीप्तिमय गहनताओं के अन्तर में निवृत्ति में रहते पदार्थों पर विचार करती,
ओ प्रज्ञामयी श्रीशोभा, इस विश्व की जगन्माता,
सृष्टि की रचनाकार, चिरन्तन की शिल्पी-वधू,
अब निज रूपान्तरकारी वरद हस्त से और विलम्ब न लगा
जो त्रिकाल की एक स्वर्ण अर्गला पर निष्फल ही धरा हुआ है,
क्योंकि महाकाल निज हृदय को प्रभु की ओर खोलने का साहस जुटा नहीं पाया है।
जगदानन्द की ओ कान्तिमयी निर्झरणी
तू संसार से मुक्त है और परात्परता में भी अगम्या है,
ओ आनन्दमयी, तू सतत हमारे हृदय की गुह्यता में बसती है
जब कि मानव तुझे बाहर खोजता और कभी नहीं पाता है,
तू दिव्य रहस्य और वैदिक भाषा की देवी सरस्वती है,
अपनी तेजस्विनी शक्ति के विशुद्ध आवेग के साथ अवतरित हो, माँ,
इस पृथ्वी पर निज चैतन्य जीवन्त रूप को दिव्यकार्य पूर्ति हेतु भेज दे माँ!
एक काल-क्षण को अपनी अमरता से पूर्ण कर दे,
एक देह में अपनी नित्यता को बसा दे,
एक मानस को पूर्ण सत्य-ज्ञान के ज्योति-सागर में डुबो दे,
एक मानवीय हृदय में विश्व-प्रेम का एकाकी स्पन्दन जगा दे।
अमर दिव्यता, नाशवान् चरणों से इस धरती पर विचरण करे
पार्थिव अंगों में सकल सुरलोक का रूप-लावण्य इनमें एकत्रित हो जाये!
ओ शक्तिमयी, एक मानवीय संकल्प की गतियों और क्षणों में
प्रभु की शक्ति की ओजस्विता की मेखला पहना दे
एक मानव की घड़ी को इतने शाश्वत सामर्थ्य से भर दे
कि वह एक भंगिमा के संकेत से सकल भावी काल को रूपान्तरित कर दे।
माँ, निज उच्च शिखरों से एक महामन्त्र उच्चारित कर दे
और एक महती क्रिया द्वारा घोर नियति के द्वारों को खोल दे।

सावित्री, पृ. ३४५

एक बीज रोपा जायेगा

"हे वीर अग्रदूत, मैंने तेरा आर्त निवेदन सुन लिया है।
निश्चय ही एक अद्वितीया अवतरित हो इस लौह दैवी विधान को भंग करेगी,
अपनी एकाकी आत्मा की शक्ति द्वारा विश्व-प्रकृति के सर्वनाश को बदल देगी।
एक असीम सत्य-मानस होगा जिसमें यह जगत् समा सकेगा,
प्रबल प्रशान्तताओं का एक मधुर और आवेगी हृदय
देवताओं के आवेशों द्वारा सञ्चालित हो उठेगा।
उस दिव्यता में सकल सामर्थ्य और महत्ताओं का संयोजन होगा;
अलौकिक श्रीशोभा इस पृथ्वी पर विचरण करेगी,
उसके केशरूपी घन-पाश में हर्ष शयन करेगा,
और उसकी काया पर एक वृक्ष-समान निज नीड़ पर प्रेम देवता
पक्षी बन निज भव्य पंखों को फड़फड़ाता आ बसेगा।
शोक-विहीन तत्त्वों का एक संगीत उसकी मोहिनी का जाल बुनेगा;
दिव्य-पूर्णता की वीणाएँ उसकी वाणी से संगत करेंगी,
उसके हास्य में सुर-सरिताओं की कलकल ध्वनि गुञ्जित होगी,
उसके अधर प्रभु के मधु-कोष होंगे,
उसके अंग परमोल्लास के स्वर्णपात्र होंगे,
उसके उरोज स्वर्गिक आह्लाद के पारिजात पुष्प होंगे।
उसके नीरव वक्षस्थल में सरस्वती का वास होगा,
एक विजेता का खड्ग-सम बल उसके संग रहेगा
और उसके नेत्रों से चिरन्तन का आनन्द-रस छलकेगा।
मृत्युदेवता की प्रचण्ड घड़ी में एक बीज रोपा जायेगा,
स्वर्ग की एक शाखा इस मानवीय धरती पर प्रत्यारोपित होगी;
विश्व-प्रकृति अपने मर्त्य-चरण को कूद कर उलाँघ जायेगी;
एक दृढ़ अपरिवर्तित संकल्प द्वारा नियति बदल दी जायेगी।"

सावित्री, पृ. ३४६

पृथ्वी पर जन्मी जाति

हे बन्दी-तेजस्वी बल, भाग्य-नियन्त्रित पृथ्वी पर जन्मी जाति,
एक अनन्त विश्व में लघु यात्राओं के साहसी वीरो,
और एक वामन मानवता के बन्दियो,
कब तक तुम इस मन के गोलाकार पथों पर चक्कर लगाते रहोगे

अपनी क्षुद्र अहम् सत्ता और नगण्य वस्तुओं से घिरे रहोगे?
क्योंकि एक रूपान्तरहीन क्षुद्रता के लिए तुम नहीं बने,
एक निष्फल आवर्तन-हेतु तुम नहीं रचे गये;
अमर-अविनाशी के द्रव्य से तुम्हारा सर्जन हुआ है;
तुम्हारे कर्म ही अति तीव्रता से तुम्हारी अभिव्यक्ति के चरण बन सकते हैं,
तुम्हारा जीवन विकसित होती देव-सत्ताओं का एक परिवर्तनशील साँचा है।
एक दिव्य द्रष्टा, एक सामर्थ्यपूर्ण सर्जनहार, तुम्हारे अन्तर में है,
वहाँ अमल श्रीमहिमा तुम्हारे दिवसों की संरक्षिका ध्यानासीन है,
सर्वशक्तिशाली शक्तियाँ इस विश्व-प्रकृति के कोषों में क़ैद हैं।
एक महत्तर नियति तुम्हारे सम्मुख प्रतीक्षा में खड़ी है:
यह क्षणिक पार्थिव प्राणी यदि संकल्प कर ले
तो निज कर्मों को एक परात्पर की योजना से जोड़ सकता है।
वह जो इस समय अज्ञानी नेत्रों से इस जगत् को घूरता है
जो घोर अचित् की रात्रि से अभी कुछ समय पहले उठा है,
जो अभी केवल छाया को देखता है अमर सत्य नहीं देख पाता,
वह अब निज नयन-कोटरों में एक अमरदेव की चितवन भर सकता है।
तथापि तुम्हारे हृदय-चक्रों में देवांश विकसित होता रहेगा,
तुम आत्मा के परिवेश में एक दिन अवश्य जागोगे,
और नश्वर मन की गिरती दीवारों का अनुभव पाओगे,
जीवन के हृदय को शान्त करने वाले सन्देश को सुनोगे
और इस विश्व-प्रकृति के अन्तर में सूर्य-सम दृष्टि से अवलोकोगे,
और चिरन्तन के द्वार पर पहुँच अपने विजयी शंखों से नाद करोगे।
धरा के उच्च रूपान्तरकारी लेखको, तुम्हें यह अधिकार दिया गया है
इस आत्मसत्ता की इन आपात्कारी दिशाओं को पार करने का
और सर्वशक्तिमयी भगवती माता को स्पर्श कर पूरी तरह जगाने का,
और सर्वशक्तिमय प्रभु से इस हाड़मांस की देह में भेंटने का
और इन लक्ष-लक्ष देह में बसे परमैकम् को जीवन में उतारने का।
यह तेरे विचरण की धरती एक सीमा है जिसने स्वर्ग को विलग कर दिया है;
यह तेरे जीवन-यापन की विधि उस ज्योति को जो तू स्वयं है, ढक लेती है।

सावित्री, पृ. ३७०

प्रकृति के हाथ मानव को गढ़ते हैं

पीड़ा वह हाथ है जिससे प्रकृति देवी मानव को महानता में
ढाल, गढ़ती है : एक आत्मप्रेरणा से पूरित कठोर श्रम है
जो दैवी निर्दयता से एक अनिच्छुक ढाँचे को तराश कर गढ़ता है।
अपने संकल्प के आवेश में अशमनीय
इस विश्व-कार्य के ये विश्व-शिल्पी
घोर कठिन श्रम-रूपी हथौड़ों को उठा लेते हैं;
वे अपने वज्र प्रहारों से अपने जीवों का रूपायण करते हैं;
अपनी ही निज सन्तानों को वे अग्नि की तपती मुद्रा से दागते हैं।
यद्यपि इस विश्वकर्मा का यह भीषण स्पर्श
मानवीय नाड़ियों-हित असहनीय यातना है,
किन्तु अन्तर में तेजस्वी आत्मशक्ति विकसित होती है,
और प्रत्येक घोर वेदना में यह एक आनन्द की अनुभूति पाती है।
वह जो स्वयं को बचाना चाहता है वह संन्यासी बना शान्त रहता है;
जिसे मानवजाति को बचाना है उसे इसकी व्यथा में भाग लेना पड़ता है,
यह सत्य वही जानता है जो इस भव्य प्रेरणा का अनुसरण करता है।
वह महात्मा जो इस दुःखी जगत् को सुरक्षा देने
और इसे काल की छाया और घोर विधान से मुक्ति दिलाने आया है,
उसे दुःख और पीड़ा के इस जूए के तले से गुज़रना पड़ता है;
वे स्वयं इस कालचक्र में पीसे जाते हैं जिसे तोड़ने की आशा से आते हैं,
निज कन्धों पर उन्हें मानव-नियति का बोझ ढोना ही पड़ता है।
स्वर्ग के वैभव वे अपने संग लाते हैं, और निज कष्टों से उनका मोल चुकाते हैं
या अपने जीवनों से वे ज्ञान के उपहार की क़ीमत देते हैं।

सावित्री, पृ. ४४४-४५

दिव्यता के सूर्य के समीप ले जाते प्रसन्न पथ

हाँ, इस दिव्यता के सूर्य के समीप ले जाते अन्य प्रसन्न पथ भी हैं;
किन्तु अति अल्पजन इस सूर्यालोकित मार्ग पर विचरण कर सकते हैं;
केवल निर्मल विशुद्धात्मा इस प्रकाश में चल पाती है।
एक और निष्कासन है, इस क्लेश और अन्धकार और जीवन-शृंखला से
छूटने का एक कठोर पलायनवादी मार्ग बताया गया है;
किन्तु कुछ अल्पजनों का पलायन कैसे इस संसार को मुक्त कर सकता है?

जब सकल मानवजाति इस दुःख के जूए तले दबी सिसक रही है।
पलायन कितना भी श्रेष्ठ क्यों न हो, जीवन का उद्धार नहीं कर सकता है,
उस जीवन का जो एक पतित धरा पर पीछे छूट जाता है।
पलायन इस परित्यक्त जाति को उन्नत नहीं कर सकता है
या विजय और रामराज्य इस पृथ्वी पर नहीं ला सकता है।
उसके लिए एक महत्तर शक्ति, एक विशालतर ज्योति को आना ही होगा।

सावित्री, पृ. ४४८

श्रीअरविन्द ने 'सावित्री' में लिखा है :

हाँ, इस दिव्यता के सूर्य के समीप ले जाते अन्य प्रसन्न पथ भी हैं;
किन्तु अति अल्पजन इस सूर्यालोकित मार्ग पर विचरण कर सकते हैं;
केवल निर्मल विशुद्धात्मा इस प्रकाश में चल पाती है। (सावित्री, पृ. ४४८)

माँ, अपेक्षित शुद्धि को प्राप्त करना कितना आनन्ददायक होगा!

जब तुम दुःख-कष्ट में रहने वाले मनुष्यों के साथ रहते हो तो केवल भागवत कृपा ही यह स्थिति ला सकती है—उनमें भी जो तपस्या द्वारा अपने अहंकार को लुप्त कर चुके हैं।

यह सभी व्यक्तिगत प्रयास के परे है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. ४२६-२७

स्वर्ग में जन्मा एक द्रष्टा मानव के अन्तःस्थल में आ बसेगा;
पराचित्शक्ति का प्रकाश मानव नेत्रों में चमक उठेगा
और सत्य-चेतना का धाम धरा पर उतर आयेगा,
जो आत्मा की किरण को साथ ले जड़-तत्त्व पर आक्रमण कर,
इसके नीरव अन्तर में अमर विचारों को जगा कर,
इस मौन हृदय में जीवन्त जाग्रत् परम शब्द झंकृत कर देगा।
यह नश्वर जीवन तब चिदानन्द का चिर धाम बनेगा,
इस देह का आत्मपुरुष अमरत्व का स्वाद पायेगा।
तब जाकर इस जगत्राता का परिश्रम सफल हो पायेगा।...
हे मर्त्य, इस महान् जगत्-पीड़ा के विधान को सहन कर,
इस दुःख-भोगते संसार में अपनी इस कठोर यात्रा-पथ पर

तू निज आत्म-सहारे हित भागवत शक्ति पर भरोसा रख,
परम दिव्य-सत्य की ओर मुड़ जा, प्रेम और शान्ति की अभीप्सा कर।
देवताओं से तुझे अल्पानन्द उधार मिला है,
अपने मानवीय दिवसों पर एक दिव्य स्पर्श तूने पाया है।
अपनी दैनिक दिनचर्या को एक तीर्थ-यात्रा बना ले,
और इन सुखों, दुःखों के छोटे पड़ावों से गुज़र प्रभु की ओर गतिशील हो।

सावित्री, पृ. ४५१

देवत्व का शीर्ष मुकुट परमानन्द है

इस देवत्व का शीर्ष मुकुट परमानन्द, शाश्वत और मुक्त है,
जीवन की अन्धी पीड़ा के रहस्य से यह भारमुक्त है :
पीड़ा-व्यथा तो घोर अविद्या का हस्ताक्षर है
जीवन द्वारा नकारे गये उस दिव्य देवता का प्रमाणपत्र है :
जब तक जीवन में हम उसे प्राप्त नहीं कर लेते पीड़ा का अन्त नहीं होगा।
निज भाग्य को अधिकृत कर लेने पर व्यक्ति को विजयरूप शान्ति मिलती है।
सहन कर; अन्त में तू भी अपना आनन्द-मार्ग पा जायेगी।
आनन्द सकल प्राणियों का गुह्य सार-द्रव्य है,
यहाँ तक कि पीड़ा और व्यथा जगदानन्द के परिधान हैं,
यही तेरे दुःख और चीत्कार के पीछे छिपा है।
क्योंकि तेरी शक्ति एक अंशमात्र है और प्रभु के समान परिपूर्ण नहीं है,
क्योंकि इस क्षुद्र व्यक्तित्व से ग्रसित
तेरी चेतना ने अपनी दिव्यता विस्मृत कर दी है।
जब तक इस हाड़मांस के पुतले की धुँधली छाया में यह विचरण करती है
और इस संसार के घोर स्पर्श को सह नहीं सकती है,
तू चीत्कार कर उठती है और पीड़ा-दुःख की दुहाई देने लगती है।
उदासीनता, पीड़ा और हर्ष, ये तीनों त्रिरूपी मुखौटे हैं,
जीवन-पथ पर आनन्दमग्न नटेश्वर के त्रिगुणीय वस्त्र हैं,
जो तुझसे आनन्दघन प्रभु की काया छिपा देते हैं।
जब तेरी आत्म-चित्शक्ति तुझे प्रभु से एकात्म कर देगी,
तेरी व्यथा तब परमानन्द में रूपान्तरित हो जायेगी,
उदासीनता और अधिक गहन हो चिर-प्रशान्ति बन जायेगी,
और परमेश्वर के शिखरों पर नग्न हर्षोल्लास की हँसी बिखरेगी।

सावित्री, पृ. ४५३-५४

अतः यदि प्रभु भी जब मानव-मन धारण करता है
और इस नश्वर अज्ञान को अपने दुशाले-सम ओढ़ लेता है
और स्वयं को त्रिपदीय वामन-रूप में बदल लेता है,
तब ही वह मानव को प्रभु की ओर विकसित होने में सहायता कर सकता है।
मानव के अन्तर में स्वयं को छिपा वह ब्रह्माण्डीय परम मनीषी कार्य करता है
और गुह्य अगम्य द्वार खोज निकालता है
और अमरता के स्वर्ण द्वार खोल देता है
नर-मानव तब नारायण-मानव के पदचिह्नों का अनुसरण करता है।
तूने मानव के अन्धकार को स्वीकारा है, तुझे उसके लिए प्रकाश लाना होगा,
उसके शोक-सन्ताप को अंगीकार कर तुझे उसके लिए सुखानन्द लाना होगा।
जड़ता से रचित इस काया में तुझे स्वर्ग में जन्मी अपनी आत्मा खोजनी होगी।"

सावित्री, पृ. ४८८

एक सत्ता जो मनुष्य के अंगुष्ठ के बराबर है

क्योंकि वह मन और जीवन के कठिन श्रम को जानती है
एक माँ-समान वह अपने बच्चों के जीवनों में अनुभव ले हिस्सा बँटाती है,
इसके लिए वह अपना एक अल्पांश सामने रख देती है,
एक सत्ता जो मनुष्य के अंगुष्ठ के बराबर है
और उसके हृदय के एक गुह्य गर्भगृह में छिपी हुई है
यह परमानन्द का सुख भूल कर यातना का सामना करने के लिए है,
एवं जगती के दुःख में भाग लेने और धरा के घावों को सहने को है
और तारों के परिश्रम के साथ-साथ श्रमरत रहने को है।
यही जीव पुरुष हममें हँसता औ' रोता, आघात का दुःख भोगता है,
विजय में उल्लसित होता, राजमुकुट-हित संघर्ष करता है;
यह मन और देह और जीवन से एकात्म बन रहता है,
अपने ऊपर उनके कष्ट और पराजय वहन करता है,
भाग्य-विधाता के कोड़ों से लहूलुहान हो सूली पर लटक जाता है,
तथापि अक्षत है और स्वयं में अमर सत्ता है यह
इस मानवीय जीवन-दृश्य में अभिनेता को सहारा देता है।
इसी माध्यम के द्वारा भगवती हम पर कृपा और निज शक्तियाँ प्रदान करती है,
प्रज्ञा के शिखरों की ओर धकेलती है, कष्टों की खाड़ियाँ पार कराती है;
वह हममें अपनी दैनिक कार्यपूर्ति-हित बल प्रदान करती है
और अन्यों के दुःख में हिस्सा बँटा सकें वह ऐसी सहानुभूति देती है
और अपनी जाति की सहायता-हेतु हममें जो अल्प शक्ति है वही देती है
इस एक छोटे-से मनुज-रूप में स्वयं का अभिनय करते हुए
हमें इस विश्व में अपनी भूमिका पूरी तरह सम्पादित करनी है
और अपने कन्धों पर इस संघर्षरत संसार का भार वहन करना है।
हमारे अन्तर में यही भागवत अंश अति नन्हा और क्षत है;
दिव्य-तत्त्व के इस मानवीय भाग के द्वारा भगवती माता
परमात्मा की महत्ता को दिक्काल में स्थापित करती है
जिससे ज्योति से ज्योति की ओर, शक्ति से शक्ति की ओर उन्नत करती जाये,
जब तक यह मनुज एक स्वर्गिक शिखर पर एक अधिपति-सम खड़ा न हो जाये।
यह देह से दुर्बल है, अपने हृदय में अदम्य सामर्थ्य रखता है,
यह लड़खड़ाता चढ़ता है एक अगोचर कर उसे थामे रहता है,
एक नश्वर रूप में यह श्रमरत आत्म-तत्त्व चैत्य पुरुष है।

सावित्री, पृ. ५२६-२७

एक ज्वलन्त महानाग

अपने गहन कमलकक्ष में उसकी चैत्य-सत्ता आसीन थी
जैसे एकाग्रता के संगेमरमरी आसन पर बैठी हो,
त्रिलोकों की भगवती माता को पुकारती
इस पृथ्वीलोक को निज धाम बना लेने को टेरती।
हठात्, एक दिव्य ज्योति से एक बिजली-सम कौंधती
उस आदि चित्शक्ति की एक जाग्रत् छवि,
एक मुखश्री, एक आकृति अवतरित हो उसके अन्तर में प्रवेश कर गयी
और उसमें अपना मन्दिर, अपना पुनीत धाम बना लिया।
किन्तु जब इसके चरण कमलों ने उस कम्पित कुसुम को स्पर्श किया,
एक शक्तिशाली गति-सञ्चालन ने उस अन्तराकाश को हिला दिया
मानों एक संसार हिल उठा हो और जिसने निज अन्तरात्मा को पा लिया हो :
उस घोर अचित् की आत्माहीन मनहीन काल अन्धरात्रि से बाहर आ
जड़ता से एक ज्वलन्त महानाग अपनी निद्रा तज जाग उठा।
वह अपने कुण्डलों को लहराता सीधा खड़ा हो गया
और बलपूर्वक अपना मार्ग आँधी-सम बनाता ऊपर चढ़ने लगा
इसने सावित्री के चक्रों को अपने प्रज्वलित मुख से स्पर्श किया;
मानों एक प्रज्वलित चुम्बन ने उनकी निद्रा को भंग कर दिया,
वे प्रसन्नता से पूर्ण प्रस्फुटित हो, ज्योति और मोद से सञ्चारित हो उठे।
तब यह शीर्ष तक जा पहुँचा और चिरन्तन के शून्याकाश से जुड़ गया।
सिर के ऊर्ध्व में सहस्रार पुष्प में, जड़तत्त्व के आधार मूलाधार पुष्प में
प्रत्येक भगवत्ता के दृढ़ आधार में और विश्व-प्रकृति की ग्रन्थि में
यह उस गुह्य जीवनधारा को धारण किये है जो अगोचर शिखरों को
जोड़ती है धरा की अगाध अचित् गहनताओं से,
हमारे चक्रदुर्गों की यह पंक्ति जो इन भीषण संसारी आघातों से
हमें सुरक्षित रखती, अति दुर्बल रक्षा-कवच बन पाती है,
इस विश्व-विराटता में, यही हमारी आत्म-अभिव्यक्ति की पंक्तियाँ हैं।
वहाँ इस आदिमूल महाशक्ति की एक छवि
आदि-शक्ति माँ भगवती का आकार और रूप धारण किये थी।
सुशस्त्रित, शस्त्रधारिणी और शुभचिह्न से सज्जित थी
जिसकी रहस्यमयी सामर्थ्य का कोई माया अनुकरण नहीं कर सकती,
बहुरूपिणी होकर भी वहाँ एकरूपा संरक्षिका महाशक्ति आसीन थी :
वह अपनी भुजाओं को एक अभयदान देती मुद्रा में उठाये थी,
किसी आदि मूल विश्व-बल का प्रतीक-सा एक पावन पशु उसके चरणों में प्रणत लेटा था,
यह जीवन्त ऊर्जा-बल का मूक ज्वाला-नेत्रों का एक द्रव्यमान था।

सावित्री, पृ. ५२८-२९

सब उसी का रूप था

सावित्री की आत्मा ने इस जगत् को जीवन्त ईश्वर-सम देखा;
इसने परमैकम् को देखा और जान लिया कि सब उसी के रूप थे।
सावित्री ने प्रभु को परम-तत्त्व के आत्मप्रसारण-सम जाना,
यही कैवल्य उसके अन्तर में और यहाँ के सकल पदार्थों का मूलाधार है
जिसके अन्तर में स्थित यह संसार परम सत्य की खोज में भटकता है
अविद्यारूपी अपने मुख के पीछे छिपा स्वयं को सुरक्षित समझता है :
वह अपनी अनन्त युगान्तरीय यात्रा में उसी प्रभु के पीछे चली थी।
सकल विश्व-प्रकृति में घटित घटनाएँ भी उसके अपने अन्तर में घटित होती थीं,
ब्रह्माण्ड के हृदय की धड़कनें उसकी अपनी ही थीं,
सकल प्राणी उसमें सोचते, अनुभव करते और उसी में गतिशील थे;
इस संसार के विस्तार में वह समायी थी,
इसकी दूरियाँ सब उसी की प्रकृति की सीमाएँ थीं,
इसकी समीपताएँ उसके अपने जीवन की अभिन्नताएँ थीं।
सावित्री का चित्त अब विश्व-मानस से अंतरंग हो गया था,
इसका शरीर उसकी देह का बृहत्तर आकार था
वह इसके अन्तर में वास करती और स्वयं को इसमें परमैकम् के रूप में जानती,
वह इसकी बहुलता में और बहुविध रूपों में अपने को पहचानती।
वह एक एकाकी सत्ता होकर भी, अखिल में समायी थी;
यह संसार उसकी आत्मा की ही विशाल परिधि थी,
अन्यों के विचार भी उसके अपने आत्मीय थे
उनकी भावनाएँ उसके अपने विश्व-हृदय के समीप थीं,
उनके शरीर उसके अपने अनेक शरीरों जैसे परिचित थे;
अब वह मात्र एक व्यक्तिसत्ता नहीं रही बल्कि समष्टि थी।
अनन्तताओं से निकल अब सब उसके पास आते,
वह स्वयं अनन्तताओं से सचेत सबमें व्याप्त हो फैल गयी,
अनन्तता ही उसका अपना स्वाभाविक धाम बन गयी।
वह कहीं बसती नहीं थी, उसकी चैत्य शक्ति सर्वत्र थी,
सुदूर के तारामण्डल उसके चतुर्दिक परिक्रमा करते;
भूदेवी ने उसे जन्मते देखा, सकल लोक उसके उपनिवेश थे,
प्राण और मन के महत्तर संसार भी उसके थे;
सकल प्रकृति देवी ने अपनी रेखाओं को उसकी कृति में पुनः रचा,
इसकी गतियाँ सावित्री के सञ्चरण की ही विशाल अनुकृतियाँ थीं।
इन समस्त व्यक्ति-सत्ताओं की वह अकेली ही आत्मा थी,
वह उनमें थी और वे सब उसमें थे।
यह पहले-पहल एक बृहत् एकात्मता थी

जिसमें उसके निज व्यक्तित्व की पहचान खो गयी थी :
जो उसका निज रूप दिखता वह सर्वेश्वर का एक प्रतिबिम्ब था।
वह वृक्ष और सुमन का एक अवचेतन प्राण थी,
वसन्त की मधुमयी कलियों का एक प्रस्फुटन थी;
वह गुलाब के रंग और शोभा में प्रज्वलित थी,
अनुराग-पुष्प का वह रक्तवर्ण हृदय थी,
इसके सरोवर में खिले श्वेत-स्वप्न का कमल थी।
अवचेतन जीवन से निकल वह मन की ओर उठ गयी,
इस संसार के हृदय का विचार और आवेश वह बन गयी,
मानव के अन्तर में गोपित वह चैत्य-सत्ता थी,
प्रभु की ओर आरोहण करती वह मानव की अन्तरात्मा थी।
उसके अन्तर में ब्रह्माण्ड पुष्पित होता, वही इसकी धरती थी।
वह त्रिकाल थी और त्रिकाल में देखा गया प्रभु का स्वप्न थी;
वह व्योमाकाश थी और उसके दिवसों का विस्तार थी।
तब जहाँ दिक्काल का अस्तित्व नहीं था वह उससे ऊपर उठ गयी;
यह पराचैतन्य अब उसका सहज परिवेश हो गया,
अनन्तता सावित्री की गतिशीलता की स्वाभाविक सहज दिशा थी;
चिरन्तनता उसके माध्यम से अब त्रिकाल को अवलोकती।

सावित्री, पृ. ५५६-५७

उसी पराज्योति की ओर हम जाते हैं

किन्तु महामाया परम-पुरुष पर पड़ा एक घूँघट है;
एक गुह्य अमर-सत्य ने इस सामर्थ्यशाली संसार को रचा है :
जहाँ अज्ञ मानस में और शरीर के प्रत्येक चरण में
चिरन्तन प्रभु की प्रज्ञा और आत्म-ज्ञान सक्रिय हैं।
यह जड़-अचित् ही तो परात्पर चैतन्य की निद्रा है।
एक अबोधगम्य अविद्या की परम-मेधा है
जिसने सृष्टि के गहन विरोधाभासों का आविष्कार किया है;
जड़तत्त्व की आकृतियाँ आध्यात्मिक संकल्प से भरपूर हैं,
अगोचर हो यह एक मूक ऊर्जा का क्षेपण करता है
और एक मशीनी यन्त्र द्वारा एक चमत्कार सम्भव करता है।
यहाँ सब कुछ विरोधों का ही एक रहस्य है :
आत्म-गोपित ज्योति का एक जादू यह अन्धकार है,
दुःख का मुखौटा लगा परमगुह्य-आह्लाद ही कष्ट भोगता है
और अविरत जीवन-शृंखला हित मृत्यु एक साधन है।
यद्यपि शाश्वत जीवन-पथ पर मृत्युदेव हमारे संग चलता है,

इस देह के आदि से एक धूमिल दर्शक-सम साथ है
और मानव के निस्सार कार्यों का एक अन्तिम निर्णायक है,
इसके सन्दिग्ध मुख का एक अन्य रहस्य भी है :
मृत्यु एक सोपान है, एक द्वार है, एक ठोकर खाता चरण है
जिसे इस सत्ता को एक जन्म से दूसरे जन्म में जाने को पार करना पड़ता है,
एक धूसररंगी पराजय है जिसके गर्भ में विजय छिपी है,
यह हमें अमरत्व की ओर ले जाता एक चाबुक है।
यह अचित्-जगत् हमारी चैत्य सत्ता द्वारा निर्मित एक भवन है,
यह शाश्वत कालरात्रि शाश्वत दिव्य दिवस की मात्र छाया है।
यह घोर निशा ही हमारा आरम्भ और अन्त नहीं है;
यह तो हमारी काली माता है जिसके गर्भ में हम छिप कर
संसारी पीड़ा की अति तीव्र जाग्रत् अवस्था से दूर उसमें सुरक्षित रह सकते हैं।
एक परात्पर ज्योति से उतर हम उस तक आये थे,
इस पराज्योति से हम जीवित हैं और उसी पराज्योति की ओर जाते हैं।

सावित्री, पृ. ६००-०१

एक गुह्य मन्द रूपान्तरकारी क्रिया कार्यरत है।
हमारी सकल पृथ्वी रज-कण से आरम्भ हो नभ में समाप्त होती है
और दिव्य प्रेम जो कभी पशु-कामना बन विकसित हुआ था,
तब तन्मय अनुरागी हृदय में एक मधुर उन्माद बन जाता है
फिर प्रसन्न चित्त में एक गम्भीर सहचारी भाव बन उदित होता है
और एक विशाल आध्यात्मिक अभीप्सा का आकाश बन जाता है।
यह एकाकी अन्तरात्मा परम एकमेव के लिए भावातिरेक से भर जाती है
मानव-प्रेम में डूबा हृदय अब प्रभु-प्रेम से प्रमुदित होता है,
यह काया उसका कक्ष एवं उसका देवालय बन जाती है।

सावित्री, पृ. ६३२

दीप्तिमयी कड़ी प्रेम ही है

मेरा प्रेम अब इन सुरलोकों के परे उदात्त हो चढ़ जायेगा
और अपने गुह्यबोध की अनिर्वचनीयता को खोज लेगा;
इसे अपने मानवीय तरीक़ों को दिव्य तरीक़ों में बदलना होगा,
तथापि पार्थिव सुखानन्द का निज एकाधिपत्य बनाये रखना होगा।
हे यमराज, केवल अपने हृदय की मार्मिक माधुरी के हित,
या केवल अपनी शारीरिक प्रसन्नता एवं हर्ष के लिए,
मैं तुझसे जीवित सत्यवान् का अधिकार नहीं माँग रही हूँ,
वरन् माँग रही हूँ हम दोनों की कर्तव्यपूर्ति के लिए, जो हमारा पावन उत्तरदायित्व है।

हम दोनों के जीवन इन तारों के नीचे प्रभु के सन्देशवाहक हैं;
इस मृत्यु की छाँह-तले हम यहाँ रहने आये हैं
प्रभु के दिव्य-प्रकाश को पृथ्वी की अज्ञ जाति-हित लुभाने,
उसके दिव्य प्रेम से मानव-हृदयों का गर्त भरने,
उसके आनन्द से इस संसार का दुःख हरने आये हैं।
क्योंकि मैं, नारी शक्ति, परमेश्वर की चित्-शक्तिरूपा हूँ,
वह सत्यवान्, चिरन्तन का प्रतिनिधि मानव में चैत्य पुरुष है।
हे मृत्युदेव, मेरा संकल्प तेरे विधान से अधिक महत्तर है;
मेरा प्रेम तेरे इस भाग्यचक्र के बन्धनों से अधिक बलशाली है :
हमारा प्रेम पुरुषोत्तम प्रभु की स्वर्गिक मुहर है।
मैं उस मुहर की तेरे विघटनकारी हाथों से रक्षा करती हूँ।
इस धरा के जीवनहित इस प्रेम को नष्ट नहीं होने दूँगी;
क्योंकि इस पृथ्वी और देवलोक को जोड़ती दीप्तिमयी कड़ी प्रेम ही है,
सुदूर की परात्पर दिव्यता का यहाँ प्रेम ही देवदूत है;

यदि सृष्टि इस अर्थहीन असत् शून्य में उदित हो सकती है

यदि सृष्टि इस अर्थहीन असत् शून्य में उदित हो सकती है,
यदि एक निराकारी चित्-शक्ति से भौतिक तत्त्व उत्पन्न हो सका,
यदि अचेत वृक्ष में प्राण आरोहण कर सका,
इसका हरित-हर्ष पन्नगी पल्लवों में प्रस्फुटित हो गया
और इसका लावण्यपूर्ण हास्य पुष्प बन खिल उठा,
यदि अचित्-ऊतक, तंत्रियों और कोषाणु में बोध जाग सका,
और संकल्प इस जड़-बुद्धि के धूसर-रंगी तत्त्व को जान सका,
और चैत्य पुरुष इस मांसलता के मध्य अपनी गुह्यता से बाहर झाँक सका,
तब वह अनामी पराज्योति मानव को झपट क्यों न धर लेगी,
और अपरा प्रकृति के गर्भ में सोयी अपरिचित शक्तियाँ क्यों न उदित होंगी?
अब भी यहाँ द्युतिमान् परम सत्य के संकेत तारों-समान
अविद्या के चन्द्र-प्रकाशित मानस के वैभव पर उदित हो उठते हैं;
अब भी यहाँ अविनाशी दिव्य प्रेमी का स्पर्श हम अनुभव करते हैं :
यदि हमारे अन्तर का द्वार तनिक-सा खुला रह जाये,
तो उस चितचोर प्रभु का प्रवेश कौन रोक सकता है
और हमारी सोयी चैत्यात्मा को चूमने में बाधा दे सकता है?
परमेश्वर तो अब भी हमारे समीप हैं, यहाँ परम सत्य का सान्निध्य भी है :
क्योंकि एक निरीश्वरवादी की काली काया उसको नहीं पहचानती है,
क्या आत्मद्रष्टा ऋषि भी पराज्योति का निषेध करेगा, निज आत्मा को नकार देगा?

सावित्री, पृ. ६३३, ६४८-४९

गुप्त परमानन्द वस्तुओं के मूल में स्थित है

एक गुप्त परमानन्द वस्तुओं के मूल में स्थित है।
एक मूक आत्मानन्द त्रिकाल के अनगिनत कर्मों पर दृष्टि लगाये है :
प्रभु के हर्ष को वस्तुओं में बसाने को विश्वाकाश विस्तृत हो फैल गया,
प्रभु के हर्ष को अन्तर में बसाने को हमारी आत्माओं ने जन्म स्वीकारा।
यह विश्व निज अन्तर में एक आदि पुरातन मोहिनी सुरक्षित रखे है;
इसके सकल उद्देश्य विश्वानन्द के सुगठित पात्र हैं
जिनमें ढाला गया सोमरस किसी गम्भीर-गहन आत्मपुरुष का आह्लादकारी पेय है :
अखिल अद्‌भुतेश्वर ने स्वर्ग को अपने सपनों से भर दिया है,
उसने इस रिक्त पुरातन व्योमाकाश को अपना जादुई गृह बना लिया है;
उसने जड़तत्त्व के चिह्नों में निज आत्मतत्त्व बिखेर दिया है :
इस तेजस्वी सूर्य में उसी की अग्नियों का तेज प्रज्वलित है,
इस शशि-ज्योत्स्ना की झिलमिलाहट में वही गगन में तैरता है;
ध्वनि के क्षेत्रों में वह मधुर नाद बन स्तुति में गूँजता है;
मरुतदेव के छन्दों में वह पदावली उच्चारता है;
रात्रि में तारों के अन्तर से वह नीरवता बन देखता है;
उषाकाल में जाग कर प्रत्येक शाखा से वही टेरता है,
पाषाण में संज्ञाहीन सोया है और वृक्षों एवं पुष्पों में मोद से सपनाता है।
इस कठोर परिश्रम में और घोर अज्ञान कष्ट की पीड़ा तक में,
कठोर धरती के ठोस संकटदायी क्षेत्र में भी वह बसता है,
मृत्यु तक में और अशुभ वातावरण होने पर भी
अस्तित्व का एक सुख, जीने का एक संकल्प तब भी दृढ़ रहता है।

सावित्री, पृ. ६३०

माँ की बाँहें आलिंगनार्थ फैली हुई हैं

एक दिन मैं अपनी इस महान् प्रिय जगती को
देवताओं के इन घोर आवरणों से उदित होते देखूँगी,
इसे भय का घूँघट और पाप का परिधान उतारते अवलोकूँगी।
हम दोनों तब शान्ति से पूरित, धरती-माता के समीप खिंच आयेंगे,
हम अपनी चैत्य-सरल आत्माओं को उसकी गोद में धर देंगे;
तब हम उस परमानन्द को, जिसके पीछे हम दौड़ते हैं, आलिंगन में बाँध लेंगे,
हम आदिकाल से खोजते उस देवता से पुलकित हो जायेंगे,
हम सुरलोक के उस अप्रत्याशित स्वर को यहाँ पा जायेंगे।
यह आशा यहाँ पर केवल विशुद्ध दिव्यात्माओं-हित ही नहीं है;
वरन् हिंसक और काली तामसिक दिव्यताएँ
जो उसी मूल उद्‌गम से रौद्ररूपा नीचे कूद कर आयी हैं

उस सद्वस्तु को पाने के लिए, जिसे शुद्धात्माओं ने खो दिया था :
वे भी इस पृथ्वी पर सुरक्षित हैं; एक भगवती माता की दृष्टि उन पर है
और उसकी बाँहें अपनी विद्रोही सन्तानों को प्रेम से बाँध लेने को फैली हुई हैं।

सावित्री, पृ. ६१३

विस्तृत दिव्य चरमताएँ

ये विस्तृत दिव्य चरमताएँ, ये विरोधी शक्तियाँ
उसी एक प्रभु की काया का वाम और दक्षिणी अंग हैं;
यह सकल सृष्टि इन दो शक्तिशाली भुजाओं के मध्य स्थित है
जो चिन्तन-मनन की असमाधेय अगाधताओं के साथ मन के समक्ष चुनौती देती खड़ी हैं।
रसातल में घोर अचित् अन्धकार है, ऊर्ध्व में अनन्त पराज्योति का आकाश है,
पराज्योति में सब जुड़े हैं, किन्तु विभक्तकारी मनःशक्ति द्वारा पृथक् होकर
आमने-सामने विरोधी, अविभाज्य बने खड़े रहते हैं,
ये दोनों विरोधी प्रभु के महान् विश्व-कार्य-हित अनिवार्य हैं
दो ध्रुव हैं जिनकी जगत्-तरंगें विशाल ऊर्जा को जाग्रत् कर देती हैं।
वह अपनी परम सत्ता की सम्मोहक गुह्यता में,
इस संसार के ऊर्ध्व में समद्रष्टा आत्मलीन समाधि में,
वह दोनों में एक रूप है, अनादि, अनन्त है,
वह दोनों से परात्पर है, वह आत्मपरन्तप पूर्ण शिव में प्रवेश कर जाता है।
उसकी सत्ता मन से परे एक गुह्य रहस्य है,
उसकी विभिन्न विधियाँ मर्त्य अविद्या को भ्रमित कर देती हैं;
यह नश्वरता इसके लघु अंशों में स्थित है,
आश्चर्यचकित, यह परमेश्वर की साहसी ढिठाई को श्रेय नहीं देती है
अकल्पित अखिल समष्टि में यह व्यक्त होने का साहस करती है,
और स्वयं को चिरन्तन प्रभु की भाँति देखती और कर्म करती है।
मानवीय विवेक के विरुद्ध यही प्रभु का अपराध है,
सर्वज्ञात सत्ता होने पर भी सर्वदा अज्ञात रहता है,
समस्त में व्यक्त है और फिर भी इस गुह्य सम्पूर्णता से परात्पर है,
परिपूर्ण शिव है, फिर भी दिक्काल में सापेक्ष भाव में बसता है,
सनातन और सर्वज्ञानी होकर भी जन्म-मरण भोगता है,
सर्वशक्तिशाली है, पर दैवयोग और विधाता की लीला में रमा रहता है,
परमात्म तत्त्व है, फिर भी जड़तत्त्व और शून्याकाश हो जाता है,
असीम, अमेय, आकार या नाम से परे होकर भी

एक देह के अन्तर में वास करता है, परमैकम्, सर्वेश्वर होकर भी
पशु और मानव और देवता बन जाता है :
एक शान्त गहन सिन्धु, वह उमड़ती-घुमड़ती लहरों में हँसता है;
विश्वरूप, वह सर्वेश्वर है, परात्पर है, शून्य निःशेष है।

सावित्री, पृ. ६५६-५७

मृत्यु की पराजय

परा-ज्योति ने ज्वलन्त जिह्वा-सम यम के विचारों को चाट लिया था,
यह ज्योति उसके हृदय में एक ज्वलन्त यन्त्रणा थी,
यह ज्योति, एक भव्य पीड़ा-सम उसकी नाड़ियों में घूम रही थी;
उसकी ज्वाला में नष्ट होता यम का अन्धकार भुनभुना रहा था।
सावित्री का प्रभुतापूर्ण परम वचन उसके प्रत्येक अंग पर शासन कर रहा था
और उसके निजी घोर संकल्प-हित कोई स्थान नहीं बचा था,
वह असहाय-सम किसी आकाश में धकेल दिया गया लग रहा था
और अब उसके अन्तर में प्रवेश नहीं पा सका और उसे रीता छोड़ गया।
उसने निज अन्धरात्रि को पुकारा किन्तु वह काँपती पीछे हट गयी,
उसने नरक को पुकारा किन्तु उसने निराश हो अवकाश ले लिया :
वह निज जड़-अचित् की ओर सहारे-हित मुड़ा,
जिससे वह जन्मा था, जो उसके आत्म-अस्तित्व का विशाल आधार था,
किन्तु उसने इसे अपनी अनन्त शून्यता में पीछे खींचा
मानों वह स्वयं को अपने ही आत्मतत्त्व के अन्तर में निगल लेना चाहता था
उसने अपने बल को पुकारा, किन्तु इसने उसकी पुकार को ठुकरा दिया।
यम की काया ज्योति द्वारा निगल ली गयी, उसकी आत्मसत्ता का भक्षण हो गया।
अन्त में वह जान गया कि पराजय निश्चित है
और वह आकार जो उसने धारण कर रखा था, धराशायी हो गया,
मानव की आत्मा को अपना शिकार बनाने की आशा उसने त्याग दी
और अमर चैत्य सत्ता को मर्त्यता में बाँध रखने की इच्छा भी।
अब सावित्री के स्पर्श से बचने को, भयभीत वह दूर पलायन कर गया
और उस पीछे लौटती कालरात्रि में शरण ले छिप गया।

सावित्री, पृ. ६६७

... यह बात *सावित्री* में बहुत अच्छी तरह समझायी गयी है! इन सब चीज़ों के अपने नियम और अपनी परिपाटियाँ होती हैं (और सच पूछो तो उनके किसी भी अधिकार को बदलने के लिए एक **दुर्जेय** शक्ति की आवश्यकता होती है, क्योंकि इनके अधिकार होते हैं, जिन्हें ये 'नियम-क़ानून' कहते हैं) ... श्रीअरविन्द इस बात को अच्छी तरह समझाते हैं जब सावित्री, मृत्यु की गोद में जाते सत्यवान का पीछा करती है, और वहाँ 'मृत्यु'-देवता से वाद-विवाद करती है। 'यह 'नियम' है, और

भला किसे 'नियम' को बदलने का अधिकार है?'—मृत्युदेव ने कहा। और तब वह अद्‌भुत परिच्छेद आता है जिसके अन्त में वह उत्तर देती है, 'मेरे 'देवता' इसे बदल सकते हैं। और मेरे 'देवता' 'प्रेम के देवता' हैं।' ओह! कितना भव्य उत्तर!

और इस बात को मृत्युदेव के सामने बार-बार दोहराने की शक्ति द्वारा वे सावित्री के सम्मुख झुक गये... उसने **प्रत्येक बात के लिए** इसी तरीक़े से उत्तर दिया।

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से १२ नवम्बर १९६०

चिरन्तन और परमेश्वर

उसकी निद्रा वहाँ पदार्थों में एक परम-शक्तिरूपा है,
जाग्रत् अवस्था में वह चिरन्तन और परमेश्वर है।
ऊर्ध्व में चिरन्तन का ध्यानमग्न आत्मसुख था,
इसका सर्वसमर्थ और सर्वज्ञ शान्त विश्राम था,
इसका स्थिर अचल मौन परिपूर्ण और अकेला था।
सकल शक्तियाँ यहाँ असंख्य सुसंगतियों में बुनी हुई थीं।
सृष्टि का सर्जनहार परमानन्द उसकी देह में रहता,
उस सौम्य स्वरूप का मस्तक प्रेम और हर्ष से रचित था
जिनको मोहक पाश के अपने जाल में पुनः धर लिया था,
गर्वीले सुखदायी अंगों में पकड़ बन्द कर लिया था
हमारे हाँफते थकित हृदय से भागते सुखों को
और जीवन से पलायन करती नग्न कामना को।
नेत्र से बचकर जो भी देवदर्शन निकल पाता,
जो भी प्रसन्नता सपने और समाधि में हर्षित कर जाती,
यह प्रेम में पगे काँपते करों से अमृत रस बिखेर जाती,
उस हर्ष के प्याले को विश्व-प्रकृति सँभाल नहीं पाती,
ये सब आकर उसके मुखश्री की शोभा में एकत्र हो गये थे
और अब उसके हास्य-अमृत में क़ैद प्रतीक्षा में खड़े थे।
उन घड़ियों की नीरवता में छिपी सब वस्तुएँ,
जीवित अधरों से जो वाचा में परिवर्तित न हो पायीं ऐसी धारणाएँ,
चिरन्तन के साथ अन्तरात्मा का जो सारगर्भित मिलन था
यह उस देवता में जन्म धारण कर तेजोमय हो गया:
पुष्प और तारे की एक रहस्यमयी गुपचुप फुसफुसाहट ने
अपना अर्थ उस देव की अगाध दृष्टि में खोल दिया।
उषा के एक गुलाब-सम उसके वाक्-पटु अधर वक्रता लिये थे;
उसकी स्मित मन के साथ अद्‌भुत ढंग से खेलती
और जब उसके अधरों से विलगाती तो हृदय में आ बसती
भोर के तारे की दीप्ति से ऐसे जगमगाती

जैसे स्वर्ग की खोज को रत्नों से सजा रही थी।
उसकी चितवन शाश्वत की दृष्टि थी;
इसके मधुमय और शान्त उद्देश्य की आत्मा थी,
प्रसाद का एक विज्ञ-भवन थी
और जिसने घड़ियों के आमोद में युगों का प्रकाश प्रकट कर दिया,
एक चमत्कारी कुंज-वन में एक प्रज्ञा का सूर्य था।
उस देव के मन की संगीतमयी उस विस्तृतता में
सब विरोधी सन्धान अपने अटूट सम्बन्धों को जानते थे,
उदार मना, वे आश्चर्य से भर एक दूसरे से भेंटते
अपने स्वरों की विभिन्नता पर आपस में विस्मय करते
और एक परिवार के जैसे सहोदरों-सम रहते
जिन्होंने अपना सर्वजनीय और रहस्यमय घर खोज लिया हो।
मानों किसी प्रेम-पगे देवता की वीणा से
वहाँ संगीत की एक तालबद्ध आनन्द-धारा बहती हो
जो स्वर्गिक सुख की प्रत्येक तरंग को गाने में जुटी हो,
उस साकारी परा-ज्योति का ऐसा ही जीवन था।
वह देवता स्वयं एक अनन्त व्योम का विस्तार-सम लग रहा था,
एक शोक-विहीन धरा के आवेश-सम दिख रहा था,
वह विश्व-सम विस्तृत सूर्य की ज्वाला जैसा दिख रहा था।

सावित्री, पृ. ६८२-८३

यह धरा सर्वशक्तिशाली आत्मपुरुषों का मनोनीत क्षेत्र है;
वीर तेजस्वी चैत्यात्माओं की यह धरा संग्रामभूमि है,
यह भट्टी है जहाँ विश्वकर्मा निज कृतियाँ रूपायित करता है।
हे राजराजेश्वर, पृथ्वी पर तेरी सेवाएँ
इस स्वर्ग की भव्य मुक्तियों की अपेक्षा अधिक महत्तर हैं...
मेरे अन्तर में अमर प्रेम की आत्मा भुजा फैलाये
सकल मानवजाति का आलिंगन करने खड़ी है।
इन दुःख भोगते मनुष्यों से हे प्रभु, मेरे लिए तेरे स्वर्ग अति सुदूर हैं।
जिस आनन्द में सब भाग न ले सकें वह अधूरा है।
ओह कितना सुखकर है स्वयं को विस्तृत करना और घेर कर
अधिक हृदयों को बाँधते जाना जब तक हमारा प्रेम तेरे संसार को भर न दे!
हे प्राण पुरुष! इन परिभ्रमण करते तारों के तले यह जीवन,
मृत्यु के साथ होती प्रतियोगिता में, जीतने को मिला है

इस कठोर और भीषण शिवधनुष को झुकाने-हित मिला है,
प्रभु की भव्य तीक्ष्ण तलवार को चमकाने-हित मिला है!

सावित्री, पृ. ६८६-८७

स्वर्ग के प्रति आह्वान

वहाँ स्वर्ग के प्रति आह्वानों का अभाव है, और इसको सुनने वाले हृदय भी विरले हैं;
साधारण मन के लिए अन्तर्ज्योति के द्वार बन्द हैं
संसारी आवश्यकताएँ मानव-समूह को पृथ्वी से जकड़े हैं,
केवल तनाव की उन्नायक घड़ी में
मानव महत्तर तत्त्वों के स्पर्श को उत्तर देते हैं:
या, किसी समर्थ हाथ द्वारा स्वर्गिक पवन में श्वास लेने को उठा दिये जाते हैं,
पर फिर उसी पंकिलता में फिसल जाते हैं जहाँ से वे उठे थे;
जिस माटी से बने हैं, वे उसी के विधान को जानते हैं
एक सुहृद् आधार पर सुरक्षित लौट आने पर हर्षित होते हैं,
और, तब भी उस लुप्त महिमा के लिए और हत महानता के लिए
उनके अन्तर में कोई रोता है, किन्तु वे निज पतन को स्वीकार लेते हैं।
साधारण मनुष्य बने रहना ही वे सर्वोत्तम सोचते हैं,
दूसरों के समान जीवित रहने में ही उनका सुख है।
क्योंकि अधिकतर मानव विश्व-प्रकृति की भौतिक योजनानुसार रचित हैं
और एक दिव्यतर स्तर का उन पर कोई अधिक ऋण नहीं है;
उनके स्तर की पराकाष्ठा मानवता का सामान्य स्तर-भर है,
एक चिन्तनशील पशु की यही भौतिक सीमा है।

सावित्री, पृ. ६८९

पृथ्वी और मानव के लिए वरदान

"तेरी शान्ति, हे प्रभो, अन्तर में रखने-हित वरदान दे,
विकराल काल गर्जन और विभीषिकाओं के मध्य में
यह शान्ति पृथ्वी पर मानव की भव्य अन्तरात्मा के लिए है।
तेरी यह शान्त नीरवता, तेरे आनन्द से भरे वरदायी हाथ हैं, स्वामी।"

"तेरा एकत्व, प्रभो, इन तुझ तक आते अनेक हृदयों में बसता है,
तेरे इन अनगिनत जीवों में बसी, यही मेरी मधुर नित्यता है।"

"तेरी शक्ति, हे प्रभो, नर-नारी को अधिकृत कर रखने को है,
सकल वस्तुओं और प्राणियों को उनके दुःख में उठा कर
एक माँ की भुजाओं में भर लेने को है।"

"तेरा आलिंगन ही तो पीड़ा की जीवित ग्रन्थि काट देता है,
तेरे हर्ष में ही तो, हे नाथ, समस्त प्राणी-जगत् श्वास लेता है,
तेरे गहन प्रेम की ये अद्‌भुत बहती धाराएँ,
अपने इस माधुर्य को, हे स्वामी, धरती औ' मानव-हित मुझे सौंप दे।"

सावित्री, पृ. ६९६-९७

अधिक समर्थ जाति का वास

समस्त तब परिवर्तित हो जायेगा, एक अद्‌भुत विधान आ
इस यान्त्रिक विश्व को व्याप्त कर उससे ऊपर उठ छा जायेगा।
एक अधिक समर्थ जाति का इस नश्वर संसार में वास होगा।
विश्व-प्रकृति के द्युतिमान् शिखरों पर, विश्वात्मा की धरती पर,
अतिमानव तब जीवन का अधिपति बन शासन करेगा,
इस पृथ्वी को प्रायः स्वर्ग की सहचरी और उसके समकक्ष बना देगा,
और मनुज के अज्ञानी हृदय को प्रभु औ' सत्य की ओर ले जायेगा
और उसकी मर्त्यता को देवत्व की ओर उठा देगा।
चहुँ ओर से घिरे बन्धनों से विमोचित एक ऊर्जा है
जिसकी ऊँचाई मृत्यु की भूखी पहुँच से परे उठा दी गयी है,
इस जीवन-ऊर्जा के शिखरों पर अमरता के संकल्प प्रज्वलित होंगे,
इसके मूलाधार के अन्धकार को प्रकाश विदीर्ण कर देगा।
तब युगों की विकास-प्रक्रिया में
समष्टि की एक अद्वितीय योजना आँकी जायेगी,
एक दिव्य सहयोगिता इस धरती का तब नवविधान होगी,
सुषमा औ' हर्ष मिल इस जीवन-पथ को नव-रूप में ढालेंगे :
इस नश्वर देह तक में प्रभु की स्मृति भर जायेगी,
प्रकृति का स्वभाव मर्त्यता से परे हट जायेगा
और आत्म-भाव का तेज इस पृथ्वी की अन्धी शक्ति का गुरु होगा;
आत्मज्ञान मानव के अभीप्सु संकल्प में प्रवाहित हो, ले आयेगा
प्रभु का सान्निध्य और दिव्य सत्य की उच्च समीपता।
तब सत्यमन इस संसार को पराज्योति के लिए अधिकृत कर
अनुरागी हृदय को प्रभु-प्रेम से स्पन्दित कर देगा
और पराज्योति का मुकुट विश्व-प्रकृति के उन्नत ललाट पर धर
इसके अचल आधार पर दिव्य ज्योति का शासन स्थापित कर देगा।
पार्थिव सत्य से एक महत्तर सत्य पृथ्वी पर वितान-सम छा जायेगा
और यह अपनी धूप मन के पथों पर बिखरा देगा;
एक अमोघ ऊर्जा विचार का मार्गदर्शन करेगी,
एक द्रष्टा आत्म-शक्ति प्राण और कर्म पर शासन करेगी,

पार्थिव हृदयों में अमर देवाग्नि प्रज्वलित होगी।
इस जड़-अचित् के घर में एक चैत्यात्मा जाग उठेगी;
यह चित्त प्रभु-दर्शन का मन्दिर होगा,
यह काया सहज बोध का यन्त्र बनेगी,
और प्राण-जीवन प्रभु की दृश्य शक्ति की एक प्रणाली।

सावित्री, पृ. ७०६-०७

अतिमानव ने जन्म ले लिया है

जब अतिमानव विश्व-प्रकृति का नृपति बन जन्मेगा
उसकी उपस्थिति से इस भौतिक संसार का रूपान्तर हो जायेगा :
वह सत्य की ज्वाला को भौतिक प्रकृति की रात्रि में प्रज्वलित करेगा,
वह चिर सत्य का महत्तर विधान पृथ्वी पर अध्यारोपित करेगा;
यह मनुज भी तब परमात्मा के आवाहन की ओर मुड़ जायेगा।
वह अपनी गुप्त सम्भावना के प्रति जाग्रत् हो,
उसके हृदय में जो कुछ सुप्त है उसके प्रति सचेतन हो जायेगा
और जब पृथ्वी सृष्ट हुई थी और परमेश्वर ने इस अज्ञानी संसार को
निज धाम बनाया था, उस प्रकृति देवी के सकल अर्थ के प्रति सचेतन हो,
वह परम सत्य और परमेश्वर एवं परमानन्द-हित अभीप्सा करेगा।
एक दिव्यतर विधान का भाष्यकार
और एक सर्वोत्तम योजना का यन्त्र बन,
एक महत्तर वर्ग इस मानव के उत्थान-हित नीचे झुक आयेगा।
मानव तब निज पराकाष्ठाओं को पाने की अभीप्सा करेगा।
यह उच्च सत्य एक निम्न अधोसत्य को जगायेगा,
यह मूक अचेत धरा तब एक सचेतन शक्ति बन जायेगी।
आत्म-चेतना की उच्चताएँ औ' भौतिक प्रकृति की मूलाधार गहनताएँ
अपने पृथक् सत्य के रहस्य से आकर्षित हो समीप आ जायेंगी
और एक-दूसरे को एक देवता-सम पहचान लेंगी।
भौतिक तत्त्वों के नेत्रों से परमात्म तत्त्व बाहर देखेगा
और जड़तत्त्व में परमात्मा का मुख दिखायी देगा।
तब मानव और अतिमानव मिल एक हो जायेंगे
और सम्पूर्ण धरती का जीवन एक ही आत्मश्वास भरेगा।

सावित्री, पृ. ७०८-०९

महानतर दिवस में प्रवेश करते साहसी वीर

विरले ही होंगे जो इस चमत्कारी दिव्य आरम्भ की झलक पायेंगे
और कुछ तुझमें उस गुह्य दिव्य शक्ति का अनुभव पायेंगे,

और वे एक अनामी पगध्वनि को भेंटने निज जीवन-पथ पर मुड़ जायेंगे,
पुण्य दिवस में प्रवेश करते वे साहसी वीर होंगे।
मन के सीमित श्वासों से निकल वे ऊर्ध्व में चढ़ जायेंगे,
संसार की विराट् योजना का सन्धान करने
वे परम ऋत्, नित्य शिव, परम विराट् में पदार्पण कर लेंगे।
इन गोपित शाश्वतताओं को तू उनके लिए प्रकट कर देगी,
अभी तक अव्यक्त अनन्तता के प्राणश्वास को,
इस जग के स्रष्टा परमानन्द के किसी आत्म-प्रसाद को,
प्रभु की सर्वशक्तिशाली ऊर्जा के किसी प्रवेग को,
सर्वज्ञाता परम-रहस्य की किसी किरण को दर्शा देगी।
किन्तु जब भागवत घड़ी समीप आने लगेगी
तब शक्तिरूपा माँ भगवती पार्थिव काल में जन्म लेगी
और इस मानवीय माटी में प्रभु का जन्म होगा
उन आकारों में जिन्हें तेरे मानव जीवनों ने तैयार कर रचा है।
तब सर्वोच्य अमर सत्य मानवजाति को दिया जायेगा :
मन की सत्ता से परे भी एक सत्ता का अस्तित्व है,
एक अमेय परम सत्ता का जो अनेक आकारों में गठित है
एक बहुविध परमैकम् का यह एक चमत्कार है,
वहाँ एक चेतना है जिसे मन स्पर्श नहीं कर सकता है,
वाणी इसकी अभिव्यक्ति नहीं कर सकती, न विचार ही इसे प्रकट कर सकता है।
इसका पृथ्वी पर कोई धाम नहीं है, मानव में कोई केन्द्र नहीं है,
फिर भी यह समस्त विचारित और कृत वस्तुओं का आदि स्रोत है,
इस सृष्टि और इसके कार्यों का उद्गम है,
यहाँ के समस्त सत्यों का मूल कारण है,
मन की खण्डित बिखरी किरणों का सूर्यमण्डल है,
चिरन्तन का देवलोक है जो प्रभु-कृपा का मेह बरसाता है,
वह विराट् उदार है जो मानव को आत्म-विस्तार हित टेरता है,
विस्तृत परम लक्ष्य है जो उसके सीमित प्रयासों का औचित्य सिद्ध करता है,
उसकी एक प्रणाली है जिससे वह परमानन्द का तनिक रस लेता है।
कुछ इस महिमा के पात्र बनाये जायेंगे
चिरन्तन प्रभु की तेजस्वी शक्ति के वे वाहन बनेंगे।
ये महान् अग्रगामी दूत हैं, युगों के शिरोमणि हैं,
पार्थिवता से जकड़े मन के महान् विमोचक हैं,
माटी की मानव काया के ये श्रेष्ठ रूपान्तर-कर्ता हैं,

सावित्री, पृ. ७०४-०५

पार्थिव जीवन दिव्य जीवन हो उठेगा

अविद्या की सीमा-चौकियाँ सब पीछे छूट जायेंगी,
और अधिकाधिक अन्तरात्माएँ प्रकाश में प्रवेश पायेंगी,
मानस-सत्ताएँ प्रज्वलित, प्रेरित हो, गुह्य अन्तर्होता को सुनेंगी
और मानव जीवन हठात् एक अन्तर्दीप्ति से प्रकाशित हो जायेंगे,
और प्राण दिव्यानन्द के अनुरागी भक्त बन जायेंगे
और मानव के सब संकल्प भागवत संकल्प से एकस्वर में जुड़ जायेंगे,
ये पृथक् व्यक्तित्व-सम विश्वात्मा से एकता की अनुभूति पायेंगे,
ये इन्द्रियाँ स्वर्गिक बोध से सक्षम हो विकसित होंगी,
देह की मांसपेशियाँ और नाड़ियाँ एक विचित्र अलौकिक मोद से मुदित
यह मानव नश्वर काया अमरता के योग्य बनेगी।
उसके ऊतकों और रोम-कूपों में एक दिव्य ऊर्जा प्रवाहित होगी
और श्वास औ' वाचा तथा कर्म-संचालन को अधिकृत कर
और समस्त संकल्प-विचारों को एक सूर्यालोक-सम चमका देगी
और प्रत्येक भावना को एक स्वर्गिक भाव से स्पन्दित कर देगी।
बहुधा एक ज्योतिर्मय अन्तर-उषा उदित हो
सोये अचेत मन के कक्षों को आलोकित कर देगी,
प्रत्येक अंग हठात् एक हर्ष की लहर से लहरा उठेगा
और समस्त प्रकृति एक महत्तर परम सान्निध्य से भर जायेगी।
इस प्रकार यह पृथ्वी दिव्यता की ओर उद्घाटित होगी
और साधारण स्वभावों में भी विशाल उत्थान की अनुभूति होगी,
साधारण कर्म परमात्मा की रश्मि से प्रकाशित होंगे
और साधारण वस्तुओं में देवता से भेंट करेंगे।
प्रकृतिदेवी गुह्य प्रभु को व्यक्त करने को जीवन धरेगी,
आत्म चित्-शक्ति इस मानव लीला का भार उठा लेगी,
यह पार्थिव जीवन तब दिव्य जीवन बन उठेगा।

सावित्री, पृ. ७१०

"सब इन्हीं से पूछो, यह सब इन्हीं के कारण हुआ है।...
यदि ये वही हैं जिनकी श्रुति इस संसार ने सुनी है
तब तो किसी अद्भुत सुखद रूपान्तर पर क्या चकित होना?
परमानन्द का प्रत्येक सहज चमत्कार
'इन्हीं' के रूपान्तरकारी अन्तर की कीमियागिरी ही है।"

"मैं निज अन्तरप्राण में सत्य-अर्थ के प्रति जाग गयी हूँ
कि प्रत्येक के प्रति प्रेम और एकत्व की अनुभूति पाना ही जीवन है

और हमारे इस दिव्य रूपान्तर की यही जादुई कुंजी है,
मैं इसी सम्पूर्ण सत्य को जानती या खोजती हूँ, हे महात्मन्।"

सावित्री, पृ. ७२३-२४

माँ, दुःख-कष्ट अज्ञान और यन्त्रणा से आते हैं। भगवती माता—सावित्री में भगवती माता—अपने बच्चों के लिए जो दुःख-कष्ट झेलती हैं वह किस प्रकार का है?

क्योंकि वे उनकी प्रकृति में भाग लेती हैं। उनकी प्रकृति में भाग लेने के लिए ही वे धरती पर उतरी हैं। क्योंकि अगर वे उनकी प्रकृति में भाग न लें तो वे उन्हें आगे न बढ़ा सकेंगी। अगर वे अपनी परम चेतना में बनी रहें जहाँ कोई दुःख नहीं है, अपने परम ज्ञान और अपनी परम चेतना में बनी रहें तो मनुष्यों के साथ उनका कोई सम्पर्क ही न होगा। इसीलिए उन्हें मानव-चेतना और मानव-रूप धारण करना पड़ता है, ताकि वे उनके साथ सम्पर्क स्थापित कर सकें। हाँ, वे भूलती नहीं। उन्होंने उनकी चेतना अपना तो ली है, लेकिन उनका सम्बन्ध अपनी वास्तविक, परम चेतना के साथ बना रहता है। और इस तरह वे दोनों को मिला कर, जो लोग उस दूसरी चेतना में हैं उनसे सचेतन प्रगति करवा सकती हैं। लेकिन अगर वे मानव-चेतना को न अपनातीं, अगर वे उनके दुःख में दुःखी न होतीं तो वे उनकी सहायता न कर पातीं। उनका दुःख अज्ञान का दुःख नहीं है : यह तादात्म्य का दुःख है। यह इसलिए है, क्योंकि उन्होंने वही स्पन्दन स्वीकार किये हैं जो उनमें होते हैं, ताकि वे उनके सम्पर्क में आ सकें और उन्हें उनकी वर्तमान स्थिति में से बाहर निकाल सकें। अगर वे लोगों के साथ सम्पर्क न रखें तो उन्हें कोई भी अनुभव न कर सकेगा, कोई उनकी ज्योति को न सह सकेगा...। यह सब प्रकार के रूपों में, सब प्रकार के धर्मों में कहा गया है। उन्होंने बहुधा भागवत 'बलिदान' की बात कही है। एक दृष्टिकोण से यह सत्य है। यह स्वेच्छा से बलिदान है, पर है सत्य : पूर्ण चेतना, पूर्ण आनन्द, पूर्ण शक्ति को तज कर बाह्य जगत् के अज्ञान को स्वीकार करना ताकि उसे अज्ञान में से निकाल सकें। अगर इस अवस्था को न स्वीकार किया जाता तो उसके साथ कोई सम्पर्क ही न होता। कोई सम्बन्ध न जुड़ता। अवतारों के आने का यही कारण है। अन्यथा उनकी ज़रूरत न होती। अगर भागवत चेतना और भागवत शक्ति सीधे अपनी पूर्णता के स्थान या अवस्था से कार्य कर सकतीं, अगर वे जड़-द्रव्य पर वहाँ से सीधी क्रिया कर सकतीं और उसका रूपान्तर कर पातीं तो मनुष्य-जैसा शरीर धारण करने की ज़रूरत ही न होती। तब 'सत्य' के लोक से पूर्ण चेतना द्वारा चेतना पर क्रिया करना ही पर्याप्त होता। वस्तुतः, शायद उस तरह क्रिया होती तो है लेकिन इतनी धीमी कि जब संसार को प्रगति करवानी हो, उसे तेज़ी से आगे बढ़ाना हो तो मानव-स्वभाव को स्वीकार करना ज़रूरी हो जाता है। मानव-शरीर धारण करने से, अंशतः मानव-स्वभाव स्वीकारना ज़रूरी हो जाता है। हाँ, अपनी चेतना खोने और 'सत्य' के साथ सम्पर्क खोने की जगह, अवतार इस चेतना को बनाये रखता है, इस 'सत्य' को बनाये रखता है और इन दोनों को जोड़ कर ही वह रूपान्तर का कीमिया पैदा कर सकता है। लेकिन अगर उसने जड़-पदार्थ को न छुआ होता तो कुछ भी न कर पाता।

क्या सावित्री पहले से जानती थी कि वह क्या करने वाली है?

उसने ऐसा कहा है। तुमने पढ़ा नहीं? उसे यह भी बता दिया गया था कि वह अकेली होगी, और उसने

उत्तर दिया : मैं अकेली रहने के लिए तैयार हूँ।...

क्या वह जानती थी कि वह "दुःखों की माता" और "शक्ति की माता" से मिलेगी?

निश्चय ही जानती थी। यह निरन्तर कहा गया है कि जो कुछ होने वाला था वह सब उसे मालूम था। यह स्पष्ट रूप में लिखा है। वास्तव में, उसने हर एक से स्पष्ट रूप से कहा : मैं तुम्हारे लिए वह लाऊँगी जिसकी तुम्हें आवश्यकता है। स्वभावतः वह जानती है, अन्यथा ऐसी बात न कहती। अगर वह न जानती तो ऐसी बात कैसे कहती?

सावित्री में "दुःखों की माता" कहती है : "शायद जब जगत् एक अन्तिम निद्रा में डूबे तो मैं भी मूक शाश्वत शान्ति में जा सोऊँ।"

ओह! यह, यह मानव-चेतना है। यह मानव-चेतना है। यह मानव-चेतना का विचार है कि जब सब दुःख समाप्त हो जायेंगे तो "मैं सो जाऊँगी।" वास्तव में श्रीअरविन्द इसी की बात कह रहे हैं। जब परम शान्ति के लिए अभीप्सा होती है, तो व्यक्ति को लगता है कि यदि प्रलय हो जाये और संसार लुप्त हो जाये, तब कम-से-कम शान्ति तो होगी। लेकिन यह वाक्य अपने-आपको काटता है, क्योंकि यदि प्रलय हो जाये तो कोई शान्ति ही न रहेगी जिसका अनुभव किया जा सके—तब तो कहीं कुछ न रहेगा!

परन्तु यह मानव-चेतना के विरोधों में से एक है : "जब तक संसार है और दुःख है तब तक मैं संसार के साथ दुःख झेलूँगा। लेकिन अगर कभी संसार शान्ति में प्रवेश करे, 'असत्' की शान्ति में प्रवेश करे, तो मैं भी आराम करूँगा।" यह एक काव्यात्मक तरीक़ा है यह कहने का कि जब तक संसार में दुर्गति है तब तक मैं भी जगत् के साथ कष्ट सहन करूँगा। जब यह अवस्था जगत् के लिए समाप्त होगी, तभी मेरे लिए भी समाप्त होगी।

तब "दुःखों की माता" क्या करेगी? वह और क्या कर सकती है?

वह "आनन्द की माता" बन जायेगी।

"सावित्री 'दिव्य माँ' की चेतना का प्रतिनिधित्व करती है न?"

हाँ।

और सत्यवान किसका प्रतीक है?

वह अवतार है। वह 'परम प्रभु' का अवतार है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. ४२६-२८

उसकी अन्तर-सहायता स्वर्ग में एक द्वार खोल देती;
उसमें प्रेम इस विश्व से भी विशालतर था,
समस्त संसार उसके अकेले हृदय में शरण ले सकता था।

सावित्री, पृ. १५

'पुरोधा'

दैनन्दिनी

जनवरी

१. यह सच है कि "हम" कठिन समय में से गुज़र रहे हैं ("हम" का अर्थ है संसार) लेकिन जो स्थिर बने रहेंगे वे उसमें से पहले की अपेक्षा बहुत अधिक मज़बूत होकर निकलेंगे।

२. एक-एक अणु में वह समस्त इच्छा शक्ति, प्रज्ञा और आनन्द भरा रहता है जिसने सृष्टि की रचना की है।

३. अपने ऊपर संयम करने से बड़ी विजय और कोई नहीं है।

४. हम स्थिर मन और शान्त हृदय के साथ ख़ुशी से काम करें।

५. हम सदा बदलते हुए ऊपरी दृश्यों को ही न देखा करें। हर चीज़ में और हर जगह केवल भगवान् की अपरिवर्तनशील एकता का ही मनन करें।

६. महान् अज्ञान व्यक्ति से अन्धकार और विनाश की शक्तियों के सुझावों को उत्तर दिलवाता है। भगवान् की अपार दया के प्रति सच्ची कृतज्ञता के भाव के द्वारा आदमी ऐसे संकटों से बच सकता है।

७. संसार दुःखों और क्लेशों से भरा है। तुम्हें यह कोशिश करनी चाहिए कि तुम किसी अतिरिक्त दुःख का कारण न बनो।

८. बस एक ही चीज़ महत्त्वपूर्ण है, वह है भगवान् को पाना।
हर एक के लिए और समस्त जगत् के लिए हर चीज़ उपयोगी हो सकती है यदि वह भगवान् को पाने में सहायक हो।

९. भौतिक में परम सत्ता का आनन्द भगवान् के प्रति कृतज्ञता की सबसे अच्छी अभिव्यक्ति है।

१०. पहले मनुष्य को जानना चाहिये और फिर क्रिया करनी चाहिये, जब कि मनुष्य पहले क्रिया करते हैं और फिर अपनी क्रिया द्वारा जानना चाहते हैं।

११. जो मिथ्या सोचते हैं वे मिथ्यात्व और दुःख-दैन्य में रहेंगे। ग़लत विचार से निकल आओ और तुम दुःख-कष्ट से बाहर निकल आओगे।

१२. काम हाथ में ले लो और श्रद्धा रखो; आवश्यकता के अनुपात में शक्ति आयेगी। तुम्हारी ग्रहणशीलता तुम्हारी श्रद्धा और तुम्हारे विश्वास पर निर्भर है।

१३. कुशल हाथ, स्पष्ट दृष्टि, एकाग्र मनोयोग, अथक धैर्य—और तुम जो भी करोगे अच्छा करोगे।

१४. पीछे मत देखो, हमेशा सामने देखो, उसे देखो जो तुम करना चाहते हो, तुम निश्चय ही प्रगति करोगे।

१५. सरलता, सरलता! तेरी उपस्थिति की पवित्रता कितनी मधुर है...!

१६. सामञ्जस्य और शान्ति केवल भगवान् के साथ ऐक्य में और भगवान् में स्थापित हो सकती है।

१७. समस्त अज्ञान से मुक्त कर, अपने-आपसे हमें मुक्त कर जिससे हम तेरी गौरवमयी अभिव्यक्ति के द्वार विस्तृत रूप से खोल सकें।

१८. हे भगवान्! जो मानसिक प्रभाव मेरे ऊपर लदे हुए हैं उन सबसे मुझे मुक्त कर, जिससे कि पूर्ण

रूप से स्वतन्त्र होकर, मैं तेरी ओर उड़ान भर सकूँ।

१९. चाहिये बस धैर्य, बल, साहस, शान्ति और अदम्य कर्म-शक्ति...।

२०. हे प्रभु, कृपा कर कि प्रत्येक क्षण हमें जो अद्‌भुत वस्तुएँ तेरी देन के रूप मिलती हैं, हम उनमें से किसी का, कभी अपव्यय न करें।

२१. भागवत इच्छा के प्रति सदा निष्ठावान् बने रहने की शक्ति हमेशा तुम्हारे साथ होती है।

२२. तेरे गुण ऐसे न हों जिसकी लोग प्रशंसा करते या जिन पर पुरस्कार देते हैं। गुण ऐसे हों जो तेरी पूर्णता लाते हैं, तेरी प्रकृति में भगवान् जिनकी माँग करते हैं।

२३. भागवत कृपा उसके लिए अनन्त है जो सच्चाई से भागवत कृपा पर विश्वास करता है।

२४. कठिनाइयों को नयी प्रगति के अवसर में बदलना अच्छा है।

२५. भगवान् हमारे शरीर के परमाणु तक में उपस्थित हैं।

२६. अगर तुम प्रगति के लिए ललकते हो और प्राण यह ठान ले कि प्रगति करनी ही है तो बड़े-से-बड़ा मूर्ख भी अक्लमन्द बन सकता है।

२७. संकट की घड़ी में पूर्ण अचञ्चलता की ज़रूरत होती है।

२८. आराधना करो और जिसकी आराधना करो, वही बनने की कोशिश करो।

२९. चीज़ों के बाहरी रूप को देख कर ही अपनी राय न बना लो, यह जानो कि इनके पीछे एक महान् प्रज्ञा छिपी हुई है।

३०. शान्ति से मन को आराम मिलता है, उसकी काम करने की शक्ति बढ़ती है और वह अच्छी तरह विकसित हो सकता है। दिन में कुछ समय नियमित रूप से शान्त और नीरव रहने की कोशिश करो।

३१. एक महान् कार्य चीज़ों का मार्ग बदल सकता है।
एक मनुष्य की पूर्णता अब भी जगत् की रक्षा कर सकती है।

मेज़पोश...

(आठ साल पहले छपी कहानी दोबारा पढ़ना चाहोगे?... शायद इसके आठ साल बाद कौन जाने, तिबारा भी आपके सामने कहीं उपस्थित न हो जाये!!!—सं.)

पुनश्च—आश्रम के एक सुधी पाठक श्री नरेन्द्र भाई ने एक दिन कहा—आप पुरानी कहानियाँ नयी-नयी टिप्पणियों के साथ दोबारा छाप देती हैं। लेकिन पढ़ने में आनन्द तो आता ही है। सम्पादिका ने उनका यह आक्षेप सिर-आँखों लिया।

सच्ची-मार्मिक घटनाएँ किसकी आँखों में नमी का झरना नहीं उतार लातीं... ऐसे क़िस्से दुनिया-जहान के किसी भी गाँव के, बस्ती के हों, जो पढ़ता है, अपनापन महसूस करता है। ऐसी ही एक सुखद कहानी है एक गिरजाघर के 'फ़ादर' रॉब रीड की सुनायी हुई:

ब्रुकलिन के उस छोटे-से गाँव के एक पुराने गिरजाघर का जीर्णोद्धार कर, नये सिरे से उसमें प्रार्थना कराने का भार मुझे सौंपा गया। पत्नी-सहित मैं बड़े उत्साह से अपने नये 'मिशन' के लिए पहुँच गया स्वर्ग के टुकड़े के समान उस गाँव में जहाँ बिराजती थी शान्ति, बसते थे कर्मठ पुरुष, फुदकते

थे स्वस्थ-सुन्दर नौनिहाल!! शहर की चौबीसों घण्टों की अकुलाहट-भरी ज़िन्दगी से निकल कर ऐसे ख़ूबसूरत माहौल को गले लगा कर हम निहाल हो उठे!! उन परवरदिगार का रह-रह कर शुक्रिया अदा करने लगे जिन्होंने अपने ही गिरजा-'घर' के रख-रखाव के लिए हमें चुना।

दो-चार दिन हमें अपने घर में बसने में लग गये। साथ-साथ देख आये गिरजाघर भी। अक्तूबर का पहला हफ़्ता। कई दिनों से सूने पड़े गिरजाघर में मरम्मत से लेकर रँगाई-पुताई सभी कुछ करवाना था। मैंने ठान ली—२४ दिसम्बर, क्रिस्मस की पूर्व-सन्ध्या का सारा अनुष्ठान इसी जीर्णोद्धारित नये 'चर्च' में होगा। सारा गाँव काम में जुट गया। स्त्री-पुरुषों ने, बच्चे-कच्चों ने अपनी-अपनी भूमिकाएँ जुटा लीं। यहाँ तक कि बड़े-बूढ़ों ने भी कुछ-न-कुछ भार सम्भाल लिया। उत्साह-उमंग और एकता का ऐसा जमघट मैंने पहली बार देखा था...। मेरी पत्नी ने गाँव की स्त्रियों के साथ खाने-पीने की सारी ज़िम्मेवारी ओढ़ ली। धन्य हो उठा मैं! काम शुरू हो गया—दिन-रात चलता रहा। मंच नया बनाया, ऊपर-नीचे, अन्दर-बाहर दीवारें खुरची गयीं, छेदों को प्लास्टर से भरा गया, लिपाई-पुताई, रंग-रोगन हुआ। यीशु की मूर्ति सजायी गयी और परिणाम यह निकला कि २० दिसम्बर की रात, चाँदनी में 'गिरजाघर' ख़ूबसूरत नगीने की तरह चमकता दीख रहा था...। हर एक की मेहनत रंग लायी थी, हर एक का चेहरा दमक रहा था।—अब हम २४ की शाम को यहाँ इकट्ठा होंगे—मैंने ऐलान कर गिरजाघर के पटबन्द करवा दिये। रात को सारे गाँव का महाभोज हुआ और सब यीशु को धन्यवाद दे अपने-अपने घर को विदा हुए।

२१ की सुबह... आसमान बादलों से घिर आया, रात को तूफ़ान का कहर टूट पड़ा, बारिश की लताड़ बरस उठी। मेरा मन गिरजाघर की ओर दौड़ा... लेकिन जा पाया मैं २२ की शाम तक ही—अन्दर जाते ही मेरा मन बैठ गया... फ़र्श पर एक जगह पानी की ढिबरी बनी हुई थी। वहाँ ऊपर छत चू रही थी। इतना ही होता तो मैं सम्भाल लेता, लेकिन...सामने की दीवार पर यीशु की मूर्ति के ठीक ऊपर २०×८ फ़ुट का प्लास्टर उखड़ गया था, ईंटें झलकने लगी थीं...। हे यीशु! यह क्या हुआ, मैंने सिर पीट लिया।

यीशु के सामने देर तक घुटने टेके मैं बैठा रहा, प्रार्थना में बुदबुदाता रहा, और आख़िर में "गाँववालों की मेहनत पर पानी न फिरने देना यीशु, अब सब कुछ तुम्हारे भरोसे..." कह, पट बन्द कर भरे मन से मैं गिरजे से बाहर निकल आया।

मंगलवार का दिन था। गाँव का पटरी का बाज़ार लगा हुआ था, साथ-साथ स्त्रियों-बच्चों ने क्रिस्मस की 'सेल' भी लगा रखी थी। अन्यमनस्क-सा मैं वहाँ से गुज़र रहा था कि एक बच्ची ने मेरा ध्यान खींचा, "फ़ादर, फ़ादर यह देखिये कितना सुन्दर मेज़पोश है, आपके घर की मेज़ पर ख़ूब जँचेगा। मैंने नज़र उठा कर देखा और ठगा-सा देखता ही रह गया—क़रीब २०×८ फुट का रुपहले रंग का वह मेज़पोश जिस पर बड़ी बारीक़ी से हाथ से काढ़े गये कई रंगों के बेल-बूटे थे... सचमुच कला का नमूना था वह। ठीक बीचोबीच काढ़ा गया था 'सलीब'—यीशु का सलीब! मैंने जेब से पैसे निकाले, बच्ची ने लेने से एकदम इन्कार कर दिया—"नहीं फ़ादर, माँ आपसे पैसे कभी नहीं लेंगी, आप तो हमें यीशु की बातें बतलाते हैं।" बड़ी मुश्किल से 'यह तुम्हारी बोनी है बेटी, शगुन के तौर पर रख लो' कह कर मैंने ज़बरदस्ती उसके हाथ में पैसे पकड़ा दिये। वह भागी घर माँ के पास, मैं भागा 'चर्च' यीशु के पास।

यीशु भी कमाल दिखलाते हैं तो कैसा सटीक!! वह मेज़पोश उसी जगह के लिए बना था... न एक इंच छोटा, न बड़ा! मेरे हाथ-पैरों में बिजली की तेज़ी भर गयी। सीढ़ी लगा, मेज़पोश टाँग कर,

सारा फ़र्श साफ़ कर साँस ली तो देखा, बर्फ़ पड़नी शुरू हो गयी थी और एक वृद्ध महिला बचाव के लिए गिरजा के दरवाज़े के सायबान के नीचे खड़ी थीं। मैंने उन्हें अन्दर बुला लिया, बेचारी अपनी बस चूक गयी थीं, अब अगली बस आध-घण्टे बाद थी। मुझे धन्यवाद दे वे चुपचाप ज़रा उदास-सी बेंच पर बैठ गयीं। मेरा तो मुख्य काम अभी बाक़ी था। यीशु के सामने घुटने टेक कर उन्हें धन्यवाद देने का...।

मुश्किल से दस मिनट बीते होंगे कि उन वृद्धा ने मेरा कन्धा थपथपाया। मैंने मुड़ कर देखा—उनका चेहरा एकदम सफ़ेद फक्, आँखें फटी-फटी। मेज़पोश की तरफ़ इशारा कर उनके अस्फुट शब्द निकले—"कहाँ से मिला आपको यह मेज़पोश?" मैंने उन्हें सारा क़िस्सा सुनाया। वे बोलीं, "फ़ादर देखो तो, उसके दायीं ओर निचले कोने में क्या ई.बी.जी. अक्षर कढ़े हैं?" कढ़े थे! ये उन महिला के नाम के पहले अक्षर थे।

उन वृद्धा ने अपनी आपबीती सुनायी—तुम विश्वास नहीं करोगे फ़ादर, ३५ साल हो गये होंगे, यानी महायुद्ध के पहले मैंने यह अपने पति के लिए बनाया था। तब हम ऑस्ट्रिया के धनी-मानी लोगों में गिने जाते थे। फिर लड़ाई छिड़ गयी। नाज़ी शहर में आ गये। मैं शहर छोड़ने को मजबूर हुई। पति हफ़्ते-भर बाद आने वाले थे, लेकिन वे गिरफ़्तार कर लिये गये, उन्हें जेल भेज दिया गया, उसके बाद क्या हुआ मुझे नहीं मालूम, क्योंकि न वे कभी घर आये, न उनकी कोई ख़बर। और आज बरसों पहले पति के लिए बनाया मेज़पोश इस गिरजाघर में यीशु के दरबार में टँका हुआ है। फ़ादर! तुम इसे चमत्कार नहीं तो क्या कहोगे भला?"

"चमत्कार से भी कहीं ज़्यादा..." मैं बोला।

मैंने उन महिला से बहुत कहा कि वे अपनी बरसों बाद मिली धरोहर ख़ुद रख लें, लेकिन वे किसी तरह भी न मानीं, बोलीं, "फ़ादर, मेरे जैसा सौभाग्य किसके भाग आयेगा? मेरे हाथ की बनायी चीज़ स्वयं यीशु के दरबार में शोभा पा रही है! यह तो अपने सच्चे ठौर पर आ गयी।" कहते-कहते उन वृद्धा की आँखों से ख़ुशी की गंगा-जमुना की धाराएँ बह चलीं। मेरा भी रोम-रोम हर्ष और आह्लाद से नाच उठा। तूफ़ान कितना बड़ा सहायक निकला...!

अचानक घड़ी देख महिला बोल उठीं, "फ़ादर, मेरी बस आती होगी। मुझे अब चलना चाहिये। मैंने उनसे हाथ जोड़ कर विनती की, "इतनी शाम, इतने ख़राब मौसम में आप बस से न जायें, मैं आज आपको गाड़ी से छोड़ कर आऊँगा। कम-से-कम इतना को मुझे करने दीजिये कृपया..." बड़ी मुश्किल से वे मानीं।

ब्रुकलिन के उस पार क़रीब ४० कि.मी. की दूरी पर था उन महिला का घर। रास्ते में उन्होंने मुझे बतलाया कि कभी उनकी गिनती भी ऑस्ट्रिया के कुलीन परिवारों में हुआ करती थी, लेकिन भाग्य ने ऐसा पलटा खाया कि उनका सब कुछ लुट गया... कहाँ नौकर-चाकरों से घिरी, अब दो जून की रोटी जुटाने के लिए हफ़्ते में दो दिन बस में ४० कि.मी. का सफ़र तय कर, एक घर में नौकरानी का काम करती हैं।

"लेकिन फ़ादर, आज मेरे सारे दुःख दूर हो गये। मेरे प्रिय पति के लिए बनाया मेज़पोश आज भगवान् के दरबार में उनके मुकुट के रूप में सज रहा है... हे यीशु! तूने मेरी चीज़ को सिर-माथे लगा लिया। देखा फ़ादर" कह कर वे ख़ुशी से बौखला-सी उठीं। मैंने उस तूफ़ान को धन्यवाद दिया जिसे कुछ देर पहले मैं मन-ही-मन कोसते न थक रहा था।

उन वृद्धा को घर पहुँचा, उनके ढेर सारे आसीस बटोर मैं अपने घर लौट कर चैन की नींद सोया।

२४ की सवेरे से ही नये गिरजाघर में शाम को प्रार्थना करने के जोश और उमंग में सारा गाँव चहक रहा था। सभी—किसी के घर में आये नातेदार-रिश्तेदार—सभी आमन्त्रित थे शाम की प्रार्थना के लिए।

गिरजाघर में टँके मेज़पोश की बात मेरे सिवाय गाँव का कोई व्यक्ति नहीं जानता था... मैंने सबसे यह बात गुप्त रखी, यहाँ तक कि अपनी पत्नी को भी कुछ नहीं बतलाया। मैं सबकी सुखद प्रतिक्रिया वहीं देखना चाहता था!

क्रिस्मस की पूर्व-सन्ध्या का वह सारा कार्यक्रम, सारा वातावरण इतना सुन्दर-मोहक था कि हर एक धन्यता के बोझ तले झुक गया। मुझ पर धन्यवादों की झड़ी लग गयी... और यीशु के मस्तक पर लहराता वह मेज़पोश तो सबकी आँखों का तारा बन गया!

सबने विदा ली, नहीं सबने नहीं, अपने मित्र के परिवार के साथ क्रिस्मस मनाने पड़ोसी गाँव से आये वे सज्जन बेंच पर मूर्ति की तरह बैठे एकटक उस मेज़पोश को निहार रहे थे...।

मेरे दिल की धड़कनें बढ़ती जा रही थीं। उनके पास जा, झुक कर मैंने उनका अभिवादन किया।

"फ़ादर, यह मेज़पोश आपके पास कहाँ से आया?"

और मैं फ़ौरन समझ गया! यीशु के प्रति कृतज्ञता के आँसुओं से अनायास मेरी आँखें लबालब हो उठीं। कहानी दोहरायी जा रही थी—कैसे महायुद्ध के समय अपनी पत्नी को सुरक्षित स्थान पर पहुँचा कर वे हफ़्ते-भर बाद उससे मिलने वाले थे, लेकिन नाज़ियों के हाथ पड़, यातनाओं के घेरे से निकल पत्नी की खोज-ख़बर के लिए की उनकी सभी जी-तोड़ कोशिशें पूरी तरह से नाक़ामयाब रहीं, और आज इस मेज़पोश ने उनके दिल और दिमाग़ को झकझोर दिया।

उनके सामने घुटने टेक, उनके दोनों हाथ अपने हाथों में ले मैंने कहा, "जी, मैं आपका थोड़ा-सा समय लेना चाहता हूँ। आपको कहीं ले जाना चाहता हूँ। चलेंगे न मेरे साथ?"

वे चुपचाप उठ कर मेरे संग हो लिये। ४० कि.मी. का सफ़र तय कर मैं उसी घर के दरवाज़े के सामने खड़ा था जहाँ दो दिन पहले मैंने किसी को पहुँचाया था। फ़र्क बस इतना था कि आज उन महिला की अमूल्य सौगात उन्हें भेंट करने आया था!

वह मिलन, उस अपूर्व मिलन की कल्पना अब आप लोगों के हाथ में...

—वन्दना

तुकनेव का एक गद्य काव्य है: मैं जा रहा था सुनसान सड़क पर। देखा एक भूखे भिखारी को, बहुत ही दुर्बल था वह। याचना थी उसकी आँखों में। देना चाहा पर मेरी जेब में कुछ भी नहीं था, एक पैसा भी नहीं, रूमाल तक नहीं। क्या करूँ?

अन्त में मैंने उसका हाथ पकड़ लिया। उठाया और सिर पर हाथ फिराया। आशा दिलायी। "मैं न सही कोई दूसरा मदद करेगा। आप हताश न हों।"

भिक्षुक के ओंठ हिले। बोला, "मेरे ठण्डे हाथों को अपने गरम हाथों से पकड़ कर आपने मुझे जो गरमी दी, उससे भी बहुत राहत मिली। आपका एहसान भूलने वाला नहीं हूँ।"

मैं धीमे पैरों आगे बढ़ा। सोचता था, उस भिक्षुक ने मुझे नया प्रकाश दिया। नया द्वार खोला और नयी राह दिखलायी। 'अखण्ड ज्योति' से साभार

SRI AUROBINDO

A New Dawn

"Dawn always means an opening of some kind—
the coming of something that is not yet fully there."

JOIN HANDS TO MAKE THIS FILM
DONATE NOW!

For details, visit: www.anewdawn.in

An offering by Sri Aurobindo Society for the 150th birth anniversary of Sri Aurobindo

An animation film is in the making ...
A Film that brings out the forgotten chapter of India's awakening.

Rs. 30. 00
Date of Publication: 01.01. 2022 (Monthly)
Regd.: PY/47/2021-2023
RNI No.: 18135/70

हाँ, इस दिव्यता के सूर्य के समीप ले जाते अन्य प्रसन्न पथ भी हैं;
किन्तु अति अल्पजन इस सूर्यालोकित मार्ग पर विचरण कर सकते हैं;
केवल निर्मल विशुद्धात्मा इस प्रकाश में चल पाती है।

(सावित्री, पृ. ४४८)